चिराग़ तले

ख़्वाजा अहमद अब्बास

प ग ति प्र का श न
दिल्ली

मूल्य ढाई रुपये

प्रोग्रेसिव पब्लिशर्ज़, ७/२२, दरयागंज, दिल्ली द्वारा प्रकाशित और
गोपीनाथ सेठ, नवीन प्रेस, दिल्ली द्वारा मुद्रित।

श्री कृष्ण दास
और
इलाहाबाद के उन दोस्तों के नाम जिन्होंने
'सरदार जी' के मामले में मेरी बहुत
सहायता की—और मुझे हिन्दी
साहित्य से परिचित
कराया ।

सूची

नीचे उतरने से पहले उसने एक बार निगाह ऊपर की। बिजली के तारों के गजरे घंटा-घर की चोटी पर लिपटे हुए थे और उनकी लड़ियाँ नीचे तक लटकी हुई थीं! एक मुर्दा राक्षस को सेहरा पहनाकर दूल्हा बनाया जा रहा था। मगर बिजली के फूल खिलने में बहुत देर थी। घंटा घर की चोटी के ऊपर दो सफ़ेद बादलों के टुकड़े नीले आकाश में तैर रहे थे। और कौवों की एक टोली उसके ऊपर से काँय काँय करती हुई गुज़र रही थी—उसके इतने पास से कि वह उड़ते हुए कौवों के नर्म काले परों की चमक और उनकी नुकीली चोंचों की धार को देख सकता था, उस हवा के झोंके को अपने मेहनत से तमतमाए हुए गालों पर महसूस कर सकता था जो उनके परों की मार से पैदा हुआ था। एकाएक उसे इस ख़याल ने गुदगुदाया कि इस वक़्त वह सारे शहर में सबसे ऊँची जगह पर बैठा हुआ है। अमीरों, रईसों, मिल मालिकों, पूँजीपतियों, नेताओं और अफ़सरों, राजा-महाराजाओं, संत-साधुओं और विद्वानों—इनमें सबसे ऊँचा स्थान आज उसका है। दो रुपए रोज़ पाने वाले एक मज़दूर का! भला और किसकी हिम्मत हो सकती है कि वह जान पर खेलकर घंटा घर की चोटी पर यूँ चढ़ जाए?

उसने अपनी गरदन मोड़ी और उसकी निगाह मैदान के पेड़ों की चोटियों और मेरीन ड्राइव के शानदार मकानों की छतों से होती हुई नीले समुद्र तक पहुँच गई जहाँ सूरज की सुनहरी गेंद धीरे-धीरे पानी में डूब रही थी। इतना सुन्दर और शानदार नज़ारा भला और किसी को कभी नसीब हुआ है? यह सोचकर उसने नीचे सड़क की तरफ़ देखा, जहाँ आते-जाते मर्द और औरतें गुड़ियों जैसे लगते थे और मोटरें बच्चों के खिलौने। एक पल के लिए वह यह देखकर मुस्कराया और उसका दिल गर्व से भर उठा। उसे न सिर्फ़ अपनी हिम्मत और बहादुरी पर घमंड था, बल्कि अपने गठे हुए मज़बूत शरीर के अंग-अंग पर घमंड था—अपने फ़ौलादी हाथों पर और अपने फुर्तीले पैरों पर घमंड, जिनके सहारे वह यहाँ तक चढ़ पाया था। उसे ऐसा लग रहा था कि इस समय

वह दुनिया का सबसे बड़ा, सबसे महत्त्वपूर्ण, सबसे ताक़तवर इन्सान है। और बाकी सब लोग—ये मोटरों वाले और रेशमी कपड़ों वाले और [illegible] साड़ियों वालियाँ, कोई अर्थ नहीं रखते।

मगर गर्व के साथ-साथ एक बेनाम-सा डर रेंगता हुआ उसके दिल तक पहुँच गया और इतनी ऊँचाई से नीचे की तरफ़ देखते-देखते उसका सिर चकराने लगा। जो नीचे जाते हुए उसका पैर फिसल जाय? हाथ की पकड़ ढीली पड़ जाय? गठे हुए, तने हुए पट्ठों की ताकत एकाएक जवाब दे दे? कोई बल्ली उसके बोझ से टूट जाय या बल्लियों के जोड़ों पर बँधी हुई किसी रस्सी की एक गाँठ खुल जाय? ...तो क्या एक पल में इस काली, पथरीली, डरावनी सड़क पर गिरकर उसके इस [illegible] गठे हुए शरीर के टुकड़े-टुकड़े न हो जायँगे? दूर नीचे सड़क पर मौत उसका कितनी बेचैनी से इन्तज़ार कर रही थी!

ऐसा डर उसे कई बार पहले भी लगा था, मगर आज डर के साथ-साथ एक नई उलझन भी थी। शहर के सब लोग हँसते-खेलते ज़मीन पर फिर रहे थे, ख़ुशी मना रहे थे। तो वह क्यों बन्दर की तरह इतनी ऊँचाई पर टँगा हुआ है? उसने ही अपनी जान को क्यों ख़तरे में डाला है? सिर्फ़ दो रुपए के लिए जो ठेकेदार उसे देगा, अगर वह सही सला-मत नीचे उतर गया। नहीं तो दो रुपए भी गए और उसकी जान भी गई। दो रुपए और एक जान! कितनी सस्ती बाज़ी थी। उसकी आँखों के सामने ताश के पत्ते घूमने लगे—इक्के, नहले, दहले, बादशाह, बेगम और गुलाम—बादशाह और गुलाम, गुलाम और बादशाह। उसका जी चाहा कि वहीं खड़े होकर चिल्लाने लगे और नीचे आने-जाने वालों से पूछे—'क्यों, आख़िर ऐसा क्यों होता है? बादशाहों के लिए [illegible] और गुलामों के लिए मेहनत, मज़दूरी और मौत। कोई [illegible] जान को ख़तरे में डाले, और दूसरे मज़े उड़ायें। कोई घंटा भर [illegible] बन्दर की तरह चढ़कर बल्ब लगाए और कोई दस एक [illegible] इन लाखों बल्बों को जगमगाकर यह नई दिवाली

मनाए। यह ऊँच-नीच, यह भेदभाव, यह अन्याय। आखिर क्यों ? क्यों ? क्यों इस एक शब्द के संघर्ष से उसके दिमाग़ में एक खतरनाक इन्कलाबी गीत गूँज उठा।

खौफ़ का पल, गुस्से और जोश का पल गुज़र गया। उसकी ज़िन्दगी में न जाने कितनी बार यह पल आया था और गुज़र गया था"और दो टाँग का बन्दर एक बल्ली से दूसरी पर पाँव धरता अपने फ़ौलादी हाथों और मज़बूत टाँगों और गठे हुए पट्ठों के सहारे नीचे उतर आया। सिर्फ एक बार, बस आधे सेकण्ड के लिए, उसका दिल चलते चलते रुक गया जब पसीने की वजह से बायाँ हाथ एक बल्ली की चिकनी गोलाई पर से फिसला। मगर फ़ौरन ही आप-से-आप उसके दाहिने हाथ की पकड़ मज़बूत हो गई। उसकी बाँहों और टाँगों के पट्ठे तन गए और उसके नंगे पाँव बिल्ली के पंजों की तरह नीचे की बल्ली मे गड़ गए" खतरे का पल भी गुज़र गया और वह नीचे ज़मीन पर उतर आया।

ठेकेदार ने उसे मज़दूरी के दो रुपए दे दिए, मगर मज़दूर कुछ देर ठहरा रहा, वहीं घटा-घर के सामने। बात यह थी कि उसने सिर्फ दो रुपए के लिए ही अपनी जान ऐसे ख़तरे मे न डाली थी। वह एक और इनाम भी चाहता था, और वह उसे मिल गया जब अँधेरा होते ही लाखों रोशनियाँ एकाएक जगमगा उठीं। यह एक नई दिवाली की दीप-माला थी। यह साधारण दीपमाला नहीं थी बल्कि अँधेरे आसमान पर चमकते हुए शब्दों में आज़ादी का ऐलान लिखा हुआ था। लोकराज का आगमन हुआ था और इन लाखों जगमगाती हुई बत्तियों में वह सैकड़ों बत्तियाँ भी थीं जो उसने अपने हाथ से लगाई थीं। यही उसका इनाम था। उसने सोचा, इस ऐतिहासिक उत्सव में मेरा भी हिस्सा है। यह घटा-घर, यह सुनहरा समाँ, यह सारी रोशनियाँ, यह ज़िन्दगी, यह चहल-पहल, यह आज़ादी, यह लोकराज, यह नया हिन्दुस्तान, यह सब मेरे दम से है—मेरे दम से—मेरे—

दिया जले सारी रात

जहाँ तक नज़र जाती थी, तट के किनारे-किनारे नारियल के पेड़ों के झुंड फैले हुए थे। सूरज दूर समुद्र में डूब रहा था। और आकाश में रंग रंग के बादल तैर रहे थे—बादल जिनमें आग के शोलों जैसी चमक थी और मौत की स्याही, सोने का पीलापन और खून की लाली।

त्रावनकोर का तट अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए सारी दुनिया में मशहूर है। मीलों तक समुद्र का पानी ज़मीन को काटता, कभी पतली नहरों के ज़रिये बनाता, कभी चौड़ी चकली झीलों की शक्ल में फैला हुआ चला गया है।

उस घड़ी उन पर भी इस सुन्दर दृश्य का जादू धीरे-धीरे असर करता जा रहा था। समुद्र शीशे की तरह शांत था, अगर पश्चिमी हवा का एक हलका सा झोंका आया और समुद्र की सतह पर हलकी-हलकी लहरें ऐसे खेलने लगीं जैसे किसी बच्चे के होंटों पर मुस्कराहट खेलती है। दूर—बहुत दूर—कोई मछेरा बांसुरी बजा रहा था—इतनी दूर की बांसुरी की पतली धीमी तान फैले हुए सन्नाटे को और गहरा बना रही थी।

मेरा साथ वाला भी इस जादू भरे वातावरण से प्रभावित हो रहा था। जैसे ही हमारी लम्बी पतली किश्ती नारियल के झुंडों को पीछे छोड़ती हुई खुले समुद्र में आई, उसने चप्पुओं पर से हाथ हटा लिए।

समुद्र की तरह वह भी ख़ामोश था। किश्ती न आगे जा रही थी, न पीछे—लहरों की गोद में धीरे-धीरे डोल रही थी। वातावरण इतना सुन्दर, इतना शान्त, इतना स्वप्निल था कि ज़रा सी हरकत या धीमी सी आवाज़ भी उस समय के जादू को तोड़ने के लिए काफी थी। किश्ती डोल रही थी। किश्तीवाला चुपचाप टिकटिकी बांधे सूरज को डूबते हुए देख रहा था। मैं खामोश था। ऐसा लगता था कि हवा भी सांस रोके हुए है, समुद्र गहरे सोच में है, और दुनिया भी घूमते घूमते रुक गई है ..

मैंने पीछे मुड़कर देखा। कोलम्बो के शहर को हम बहुत दूर पीछे छोड़ आए थे। अब तो तट के किनारे वाले नारियल के झुंड भी नज़र न आते थे। और दूर से आती हुई ट्रेन की सीटी की आवाज़ ऐसी सुनाई देती थी जैसे किसी दूसरी दुनिया से आ रही हो। ऐसा लगता था जैसे उस छोटी सी किश्ती में बहते-बहते हम किसी दूसरे ही संसार में जा निकले हों। या बीसवीं सदी की दुनिया, उसकी संस्कृति और प्रगति को बहुत दूर छोड़ आए हों और किसी पिछले युग में वापस पहुँच गए हों जब इन्सान कमज़ोर था और प्रकृति के हर तत्त्व के सामने माथा टेकने पर मजबूर था। यहां समुद्र गहरा था—बहुत गहरा, और आकाश ऊंचा था—बहुत ऊंचा। और समुद्र और आकाश के बीच एक नन्ही सी, कमज़ोर सी तुच्छ सी किश्ती डोल रही थी और छोटा सा, काला सा और नंगा किश्तीवाला ऐसा लगता था जैसे किसी पुराने ज़माने से भटककर इधर आ निकला हो जब इन्सान ने नाव बनाना और चप्पू चलाना सीखा ही था .

सूरज की अग्नि भेंट समुद्र की सतह पर एक पल के लिए ठिठकी और फिर धीरे-धीरे पानी में डूब गई—और फिर उसकी आखिरी किरणों की पच्चीकारी आकाश पर गुलाबी पाउडर मलते हुए बिखर गई। और इसके थोड़ी देर बाद मौत की परछाईं सी गाढ़ गहरा अंधेरा आसमान और ज़मीन दोनों पर छा गया।

और अब वह वहाँ पहुँच गया हो जहाँ न दुःख है न सुख है—सिर्फ एक गहरी अथाह निराशा है और उदासीनता है।

हाँ, तो मैंने उससे पूछा—"वह क्या है?" और उसने पीछे मुड़े बिना जवाब दिया—"अभी आप खुद ही देख लेंगे, साहब।" जैसे उसे पहले ही से मालूम हो कि मैं किस अनोखे दृश्य की तरफ इशारा कर रहा हूँ। और फिर उसने मेरी किश्ती को धीरे-धीरे उसी तरफ़ खेना शुरू कर दिया जिधर अँधेरे समुद्र में रोशनी बहती हुई जा रही थी। थोड़ी देर के बाद मैंने देखा कि एक और किश्ती चली जा रही है जिसे एक अकेली औरत खे रही है, और उस किश्ती में एक लालटेन रखी है जिसकी रोशनी दूर से मैंने देखी थी। इतनी रात को अँधेरे समुद्र मे वह कहाँ जा रही थी? और क्यो? क्या वह सचमुच की किश्ती थी—या केवल मेरी कल्पना की उपज जो उस जादू भरे अँधेरे वातावरण में उभर आई थी।

मैंने देखा कि मेरे माँझी ने अपनी किश्ती को औरत की किश्ती से काफ़ी फ़ासिले पर रखा ताकि हम अँधेरे मे छिपे रहें और वह हमें न देख सके। मगर लालटेन की रोशनी के दायरे में वह अच्छी तरह नज़र आ रही थी। एक मैली-सी साड़ी में लिपटी हुई दुबली-पतली औरत थी, मगर उस वक्त चेहरा साड़ी के आँचल में छिपा हुआ था। उसकी किश्ती बीच समुद्र में एक जगह जाकर रुक गई जहाँ एक डूबे हुए वृक्ष का ठूँठ पानी में बाहर निकला हुआ था। समुद्र में थोड़े थोड़े फ़ासले पर ऐसे कितने ही ठूँठ आसमान की तरफ़ उँगली उठाए खड़े थे, मगर उस वृक्ष पर एक लालटेन बँधी थी जिसमें अब उस औरत ने तेल डाला और फिर दियासलाई जलाकर उसे रोशन किया।

जैसे ही वह लालटेन जली उसकी रोशनी में मैंने उस औरत का चेहरा देखा, जिस पर से आँचल अब ढलक गया था। वह चेहरा आज तक मुझे अच्छी तरह याद है। मैं उसे कभी नहीं भूल सकता। पीला, बीमार चेहरा, पिचके हुए गाल, धँसी हुई आँखें, थकी परेशान और

मुस्कराता, हँसता, भीड़-भाड़ में से गुज़रता हुआ एक अजीब नशे में चूर वह अपने घर की तरफ चल पड़ा। रेलें, ट्रामें, बसें सब खचा-खच भरी हुई थीं। कोई सवारी मिलनी भी असम्भव थी। सो पैदल ही वह चालबादेवी, भायखाला, लालबाग होता हुआ परेल पहुँच गया। हर सड़क पर भीड़ लगी हुई थी, हर बिल्डिंग नीचे से ऊपर तक रोशनियों से जगमगा रही थी—रोशनियाँ जो उसने या उस जैसे मज़दूरों ने लगाई थीं, जिनके लिए उस जैसे मज़दूरों ने अपनी जानें जोखों में डाली थी। सड़क पर लोग रोशनियाँ देखने के लिए निकले हुए थे। वह खुश थे हँस रहे थे, गा रहे थे। और उसका दिल भी गा रहा था।

परेल के पुल से जब उसने सारे शहर को जगमगाते हुए देखा तो उसने सोचा—यह लाखों करोड़ों रोशनियाँ ऐसी लगती हैं जैसे रात की काली राजकुमारी को मोतिए के सफेद फूलों के गजरे पहना दिए गए हों। और फिर अपने काव्यमय विचारों पर वह खुद ही शरमा-सा गया। मगर उसने सोचा, घर जाकर यह बात अपनी गौरी को बता-ऊँगा। वह यह सुनकर बहुत खुश होगी ··

मगर यह बात उसके मन ही में रही और वह गौरी को न बता सका क्योंकि जिस तंग गली में उनकी चाल थी, वहाँ तो एक गैस की बत्ती अपना मैला बिसूरता हुआ मुँह लिए जल रही थी। सड़कों और बाज़ारों की जगमगाहट के बाद इस गली की मद्धम रोशनी उसे अँधेरा सा लगी। और फिर झपझाता रास्ता टटोलता अपनी चाल तक पहुँचा। लकड़ी की सीढ़ियों पर घुप अँधेरा था और उन पर चढ़ना उसे घटा-घर की मशाल पर चढ़ने से भी ज़्यादा खतरनाक लगा। कई दूसरे कमरों में मिट्टी के तेल की बत्तियाँ धुएँ से घिरी हुई थीं। मगर खुद उसके कमरे में अँधेरा था। उसकी बीवी ने कहा—"आज बाज़ार में तेल नहीं मिला।"

और उस पल में वह काली राजकुमारी के गले में मोतिए के गजरे वाला, खूबसूरत रोमांस को भूल गया जो वह रास्ते-भर अपनी पत्नी

को बताने के लिए सोचता आया था। एकाएक उसे उन लाखों-करोड़ों बिजली की बत्तियों का ध्यान आया जो सारे शहर में वह अभी देखता चला आ रहा था। और फिर उसे याद आया कि उनकी अपनी चाल में बिजली की एक भी बत्ती नहीं थी। क्यों? इसलिए कि म्यूनिसिपेलटी का कहना था कि बिजली शहर की सारी जरूरतों के लिए काफी नहीं है, और इसलिए कितनी ही चालों को अँधेरे ही मे रहना पड़ेगा।

दूर, बहुत दूर, सारा शहर लोकराज का त्यौहार मना रहा था। करोड़ों रोशनियां आज़ादी और प्रजातन्त्र की घोषणा कर रही थीं। मगर इस चाल के रहने वालों के लिए वे रोशनियां उतनी ही खूबसूरत मगर उतनी ही बेकार थीं जैसे किसी राक्षस के सिर पर जगमगाता हुआ सेहरा······या किसी काली राजकुमारी के गले मे मोतियों के गजरे ··इतनी दूर थीं जैसे आसमान पर फैले हुए सितारे ··मगर वे जानते थे कि एक दिन इन्हीं तारों को तोड़कर ज़मीन पर लाना होगा ·· अँधेरी चालों में रोशनी करने के लिए ·

शीशे की दीवार

रेस्तरां के अन्दर आर्ट था, सजावट थी, कायदा और कानून था, अजन्ता की तस्वीरें थीं, बुद्ध की संगमरमर की मूर्तियाँ थीं, दक्षिण के मन्दिरों में से चुराए हुए कांसे के बुत थे। अगरदानों से खुशबूदार धुआँ निकल रहा था। चमकती हुई थालियों मे पूरियां, चावल और छः तरह की तरकारियां, दाल, रायता, पकौड़ियां, मिठाई। मेहमान खाना खा रहे थे और साथ-साथ भरत-नाट्यम् का नाच भी देख रहे थे। प्लेटें चबाने, डकारने और छुरी कांटों, प्लेटों और थालियों के टकराने की आवाज़ें, घुंघरुओं की झंकार के साथ मिलकर एक अनोखा संगीत पैदा कर रही थीं।

रेस्तरां के बाहर शोर था और धक्कम-धक्का था। हज़ारों आदमियों का जमघट था। मेहनत के पसीने की बू थी।

लाल रोशनाई

'डैम !'

लम्बे बालों वाले नौजवान ने ऑक्सफोर्ड के सीखे हुए लहजे में कहा, और अपने चाँदी के सिगरेट-होल्डर से राख झाड़ते हुए लाल चमड़े की जिल्द वाली किताब को तिपाई पर रख दिया—जिसे वह पढ़ नहीं रहा था बल्कि सिर्फ तस्वीरें देख रहा था। फिर उसने पास रखे हुए गिलास को उठाया, व्हिस्की सोडा का एक घूँट पिया, मख़मली सोफे से उठा और नर्म व बढ़िया ईरानी कालीन पर चलता हुआ खिड़की तक पहुंचा।

खिड़की में से उसने एक छिछलती हुई नज़र उस भीड़ पर डाली जो उसके मकान के सामने सड़क पर इकट्ठी हो गई थी। जहां तक नज़र जाती थी भीड़-ही-भीड़ नज़र आती थी। माटुंगा और माहिम, दादर और परेल, भिंडी बाजार और भुलेश्वर, गिरगाँव और कालबा देवी और न जाने शहर के किस-किस गन्दे कोने से ये लोग चलकर आये थे। परेल के बहुत से मज़दूर खुली हुई बे-छत की मोटर गाड़ियों में खचाखच भरे हुए थे और बेफिक्री से गा रहे थे। 'महात्मा गांधी की जय' और 'पं० जवाहरलाल नेहरू जिन्दाबाद' के नारे लगा रहे थे। आगे कहीं सड़क पर मोटरें रुकी थीं और अब इन्सानों की गंगा नहीं ठहरकर एक समुद्र बनती जा रही थी। मगर भीड़ में किसी को न कोई चिन्ता थी न कोई जल्दी। वे बातें कर रहे थे, मज़ाक कर रहे थे, हँस रहे थे, यूँ ही शोर मचा रहे थे, पीपनियां और सीटियां और बांसुरियां और तालियां बजा रहे थे, टीन के कनस्तरों को पीट रहे थे और कई जोशीले मस्तक पर थिरक-थिरक कर नाच भी रहे थे। न जाने क्यों वे होली और दिवाली, ईद और शबरात से बढ़कर इस अनोखे उत्सव को मना रहे थे।

"हुँः! एंग्लो-अमरीकी साम्राज्य के पिट्ठू! डालमिया, बिड़ला के एजेन्ट!" लम्बे बालों वाले नौजवान ने खिड़की बन्द करते हुए

इन्तज़ार! बेचैनी!

सेठ साहब ने ड्रामाई अन्दाज़ में अपना भाषण रोका, अपनी सफ़ेद खद्दर की टोपी को फिर सिर पर जमाया, दो बार खंखार कर गला साफ़ किया, सामने रखे हुए चाँदी के गिलास में से पानी पिया और फिर बोले—"हमारे मिल के सब डायरेक्टरों ने फ़ैसला किया है कि आज के दिन की खुशी में ब्रिटिश क्राउन मिल्स का नाम बदलकर 'स्वतन्त्र भारत मिल्स' कर दिया जाय। इससे बढ़कर आप सब के लिए खुशी की बात भला और क्या हो सकती है?"

उन्होंने एक पल इन्तज़ार किया कि तालियाँ बजें, मगर सारी भीड़ पर सन्नाटा छाया था। इसलिए उन्होंने अपना भाषण चालू रखा—

"हाँ, एक बात और कहनी है। जैसा आप खुद सोच सकते हैं मिल का नाम बदलना कोई आसान या सस्ता काम नहीं है। कितने ही साइनबोर्ड नए बनवाने होंगे। नए नाम की रजिस्ट्री करानी होगी। कपड़े के थानों पर लगाने के ठप्पे बदले जायँगे। खत के कागज, लिफ़ाफ़े नये छपवाए जायँगे। इसलिए मुझे अफ़सोस है कि इस साल हम आपको कोई बोनस न दे सकेंगे। मगर मुझे विश्वास है कि इस मिल के देश-भक्त मज़दूर हमारे फ़ैसले को पसन्द करेंगे। जैसा किसी महापुरुष ने कहा है—'इन्सान रोटी ही खाकर नहीं जीता, उसके लिए राष्ट्रीय आदर्श और देश-सेवा का भोजन भी तो चाहिए,' हा हा, हा हा"

यह कहकर वह अपने मज़ाक़ पर आप ही ज़ोर से हँसे, मगर उन की समझ में यह नहीं आया कि सब मज़दूर क्यों चुपचाप बैठे रहे? जैसे इन सब को कोई साँप सूँघ गया हो!

गुण्डा और महागुण्डा

"लोकराज की जय!" गुण्डे ने ज़ोर से नारा लगाया जब उसे बताया गया कि प्रजातन्त्र उत्सव की खुशी में डाके और [illegible] कैदियों

"बत्तियाँ बुझा दो"

भिखारी को गुस्सा आ रहा था।

सारा दिन कितना बुरा कटा था। सड़कों पर इतनी भीड़ थी कि एक भिखारी को भीख मांगने के लिए हाथ फैलाने को भी जगह नहीं थी। और न इस भयानक शोर में कोई उसकी 'भगवान् के नाम पर बाबा' की पुकार सुन सकता था। आधी रात तक हज़ारों आदमी उस सड़क की पटरी से गुज़रते रहे थे, जो बरसों से उसके सोने का कमरा बनी हुई थी। चीथड़ों का वह ढेर जो उसके बिस्तर का काम देता था हज़ारों कदमों से रौंदा जाकर अब खो गया था।

घण्टा-घर दो बजा रहा था जब भीड़ कम हुई और वह अपनी पटरी के पथरीले गद्दे पर लेट सका। मगर अब भी उसके लिए सोना सम्भव नहीं था।

चारों ओर, इधर उधर, ऊपर नीचे, आस-पास की सब इमारतों पर लाखों बत्तियाँ बेकार जल रही थीं। इस सारी जगमगाहट का बस एक ही कारण लगता था, कि भिखारी उनकी भयानक चकाचौंध में सो न सके।

गुस्से से काँपता, आँखें मलता वह उठा और चौराहे के बीचों बीच आकर खड़ा हो गया। उसने नज़र उठाकर उन रोशनियों को देखा जो उसे सोने न दे रही थीं, जो उस पर हँस रही थीं, उसका मजाक उड़ा रही थीं। ये रोशनियाँ उसकी दुश्मन थीं। देर तक वह गुस्से-भरी आँखों से उन्हें घूरता रहा। फिर उसने नफरत से ज़मीन पर थूका। एक गाली उसकी ज़बान से निकली और सुनसान चौराहे के चारों ओर गूँज गई और सिर उठा कर आकाश के तारों से उसने चिल्लाकर कहा —

"बुझा दो, ओ भगवान्! इन बत्तियों को बुझा दो!"

धुन में खड़े हुए। हाथ, जिनमें वह लालटेन की बत्ती को ऊँचा कर रही थी, कमज़ोरी से काँप रहा था। मगर उस लालटेन की तरह वह चेहरा भी एक अन्तरप्रकाश से चमक रहा था। पतले सूखे होठों पर मुस्कराहट थी और आँखों में एक अजीब चमक—इन्तज़ार की चमक, आशा की चमक, विश्वास की चमक, ऐसी चमक जो भजन करते समय किसी साधु की आँखों में हो सकती है, किसी शहीद की आँखों में या किसी प्रेमिका की आँखों में जो अपने प्रेमी से बहुत जल्द मिलने का इन्तज़ार कर रही हो।

ज़रूर वह भी अपने प्रेमी की प्रतीक्षा में थी। कम-से-कम मुझे इसका यकीन हो गया। मैंने देखा कि उसने अपनी किश्ती घुमाई और जिस खामोशी से आई थी उसी तरह धीरे-धीरे चप्पू चलाती हुई उस टापू की तरफ़ चली गई जहाँ सितारों की रोशनी में माहीगीरों के झोंपड़े धुँधले-धुँधले नज़र आ रहे थे। अब वह गा रही थी, मलयाली ज़बान का कोई लोक-गीत, अनजाना मगर फिर भी जाना-पहचाना जिसके शब्दों को मैं न समझ सकता था मगर ऐसा लगता था जैसे यह गाना मैंने पहले भी किसी और ज़बान में सुना हो।

"यह क्या गा रही है?" मैंने पूछा।

और मांझी ने जवाब दिया—"यह हम लोगों का पुराना गीत है, साहब! औरतें अपने प्रेमियों के इन्तज़ार में गाती हैं। 'मैं सारी रात दिया जलाए तेरी बाट देखती रहती हूँ—तू कब आएगा, साजन?'"

और मुझे अपने ही देश का लोक-गीत 'दिया जले सारी रात' याद आ गया, जो हमारे यहाँ की औरतें भी ऐसे अवसरों पर ही गाती हैं। क्या सारी दुनिया की स्त्रियों के मन में से एक ही आवाज़ उठती है? मैंने सोचा और फिर मांझी से कहा—"तो इसीलिए वह यहाँ लालटेन जलाकर लाई थी कि अगर उसका पति या प्रेमी रात को लौटे तो अँधेरे में उसे रास्ता न खो दें!"

माँझी ने कोई जवाब न दिया।

मैंने फिर सवाल किया—"क्या इसका प्रेमी आज की रात आने वाला है?"

अँधेरे में माँझी की आवाज़ ऐसे आई जैसे वह किसी गहरे दुःख से बोझल हो—"नहीं, वह नहीं आएगा—न आज रात, न कल रात। वह मर चुका है, कई बरस हुए मर चुका है—"

मैं कुछ समझ न सका और हैरान होकर पूछा—"क्या मतलब? क्या इस औरत को नहीं मालूम कि उसका प्रेमी मर चुका है और अब कभी न लौटेगा?"

"वह जानती है—शायद! मगर वह मानती नहीं। वह अब तक प्रतीक्षा में है—उसने आशा नहीं छोड़ी—"

"और कई बरस से वह हर रात यहाँ आती है और यह लालटेन जलाती है ताकि उसके प्रेमी की किश्ती अँधेरे में रास्ता पा सके!" मैंने कहा, माँझी से नहीं अपने आप से। अब मुझे अनुभव हो रहा था कि आज मैंने अपनी आँखों से अमर प्रेम की झलक देखी है—ऐसा प्रेम जो किस्से-कहानियों में पढ़ने में आता है, जिन्दगी में कभी कभार ही मिलता है! मेरी कहानी-लेखक की चेतना एकाएक जाग उठी थी, और एक सवाल के बाद दूसरा सवाल करके मैंने माँझी की ज़बानी पूरी कहानी सुन ली।

यह कहानी प्रेम-कहानी भी थी और हिन्दुस्तान के स्वतन्त्रता संग्राम की दास्तान भी! सन् १९४२ में जब सारे देश में इन्क़लाबी तूफ़ान आया, त्रावनकोर की जनता—विद्यार्थी, मज़दूर, किसान—यहाँ तक कि माँझीगीर भी अपने प्रजातन्त्र अधिकारों के लिए विदेशी सरकार के विरुद्ध उठ खड़े हुए। कोट्टायम के कई हज़ार माँझियों ने हड़ताल की और ऐलान कर दिया कि काम पर नहीं जायेंगे, चाहे इस समुद्र का रंग हमारे ख़ून से लाल ही क्यों न हो जाय।

अनपढ़ माँझी की ज़बान से यह जोशीले शब्द सुनकर मैं

सूरती थी उनमें · ”

मैंने सोचा, कहानी से हटकर हम कवितामय प्रत्युक्तियों में फँसते जा रहे हैं। मुझे राधा की सुन्दरता के वर्णन में इतनी दिलचस्पी न थी जितनी कृष्ण के अन्त में। इसलिए मैंने “और फिर क्या हुआ?” कहकर बातचीत का रुख फिर घटनाओं की तरफ़ फेरना चाहा।

“फिर क्या होना था, साहब? कृष्ण के उस जोशीले भाषण के बाद तो पुलिस उसके पीछे ही पड़ गई। उसके लिए बड़े-बड़े जाल बिछाए उन्होंने, मगर वह उनके हाथ न आया। छिपकर काम करता रहा। पुलिस वाले दिन-भर उसकी तलाश में मारे-मारे फिरते, मगर उन्हें यह नहीं मालूम था कि हर रात को इसी अँधेरे समुद्र में तैरता हुआ वह राधा से मिलने उस टापू तक जाता और सवेरा होने से पहले फिर तैरता हुआ वापस आ जाता। और सब पुलिस का ठट्ठा उड़ाते और कहते, हमारा कृष्ण कभी इन पुलिस वालों के हाथ आने वाला नहीं है।”

“तो सारे माँझी कृष्ण की तरफ़ थे?”

“हाँ, साहब, सभी उसके साथी थे सिवाय उनके · ” और एक बार फिर उसकी ज़बान रुक गई।

“सिवाय किनके?”

“जो राधा की वजह से उससे जलते थे, साहब—”

“फिर क्या हुआ?”

“चाँद ढलता गया साहब, और जब अँधेरी रातें आईं तो हर रात को अपने कृष्ण को रास्ता दिखाने के लिए समुद्र के बीच में राधा एक लालटेन जलाने लगी। हर शाम को वह इसी तरह—जैसे वह आज आई थी—किश्ती में इस जगह आती और लालटेन जलाकर वापस हो जाती।”

मैंने पीछे मुड़कर जब अँधेरे समुद्र में इस नन्ही रोशनी को झिल-मिलाते हुए देखा, तो मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे एक बार फिर यहाँ

और कृष्ण अपनी मज़बूत बाँहों से पानी को चीरता हुआ अपनी राधा से मिलने चला जा रहा है।

"और फिर क्या हुआ?"

"एक रात राधा ने लालटेन जलाई, मगर वह बुझ गई और जब कृष्ण रात को तैरता हुआ आया तो उसको रास्ता दिखाने के लिए वहाँ रोशनी न थी।

"क्यों, क्या हुआ? क्या कोई तूफ़ान आया था?"

"हाँ, यही समझिए कि एक तूफ़ान आया। मगर वह तूफ़ान एक बीमार आदमी के मन में उठा था। उसने अपनी कौम को दग़ा दी और लालटेन बुझाकर अपने दोस्त की मौत का कारण हुआ।"

"मगर क्यों? कोई इन्सान ऐसी कमीनी और बेकार हरकत कैसे कर सकता है?"

"मुहब्बत के लिए। कम-से-कम वह यही समझता था, साहब! पर उसकी मुहब्बत अन्धी थी! मुहब्बत क्या, एक बीमारी थी! प्रेम नहीं पागलपन था! वह जानता था कि राधा कृष्ण के सिवाय किसी और की तरफ़ देखना भी पसन्द नहीं करती। तो उसने कृष्ण को—अपने दोस्त को—ख़त्म कर दिया।"

"तो कृष्ण डूबा नहीं, क़त्ल किया गया था?"

"उस रात को लालटेन बुझाना कृष्ण को क़त्ल करने के बराबर ही था, साहब! पर हत्यारे को यह नहीं मालूम था कि कृष्ण की मौत से उसका भला न होगा—बल्कि उसका भयानक जुर्म भूत बनकर उसके मन में हमेशा मँडराता रहेगा, उसका दिन का चैन और रात की नींद हराम ...।"

अब हमारी किश्ती दाइलोन की बन्दरगाह के पास पहुँच गई थी और मैं इस अनोखी कहानी का अन्त जानना चाहता था।

"हाँ, उस रात को कृष्ण डूबकर मर गया। फिर क्या हुआ?"

"कृष्ण के घर के लोगों का पता न रहा। पुलिस के डर से

उन्होंने हड़ताल बन्द कर दी।"

"और राधा? जब उसने कृष्ण की मौत की खबर सुनी, तो उसने क्या किया?"

"आज तक उसे कृष्ण की मौत का यकीन ही नहीं आया। बात यह है कि कृष्ण की लाश आज तक समुद्र से नहीं निकली, सो आज तक हर शाम को राधा वैसे ही किश्ती में आती है, लालटेन जलाती है, और वापस जाकर रात-भर अपने झोंपड़े के सामने बैठी कृष्ण का इन्तज़ार करती रहती है।"

"और उस गद्दार का क्या हुआ? वह पापी जिसने कृष्ण को मौत के घाट उतारा और अपने लोगों और उनके स्वतन्त्रता संग्राम के साथ गद्दारी की, उसका क्या अन्त हुआ? वह अब क्या करता है?"

माझी ने मेरे सवाल का कोई जवाब न दिया। पीठ मोड़े, कन्धे और सिर झुकाए वह चुपचाप बैठा चप्पू चलाता रहा, मगर उसकी खामोशी में उसकी दोषी आत्मा की धड़कन थी। उस समय सारे ब्रह्माण्ड पर सन्नाटा छाया हुआ था—मौत की तरह गहरा सन्नाटा—मगर रेल की सीटी ने मुझे चौंका दिया, मैं उसी रात कोइलान को विदा कहने वाला था।

किश्ती से उतरने से पहले मैंने एक बार फिर समुद्र की तरफ निगाह की। आसमान पर अब हज़ारों सितारे जगमगा रहे थे, मगर एक सितारा अँधेरे समुद्र के बीच में चमक रहा था। यह राधा की लालटेन थी जो रात-भर उसके कृष्ण का इन्तज़ार करती रहेगी। आज की रात ... और कल की रात ... और परसों की रात ... राधा के प्रेम का यह सितारा हमेशा चमकता रहेगा। इसलिए कि यह आशा का सितारा है।

लड़ना होता है। सो ऐसे भयानक दुश्मनों का सामना करने के लिए हथियार भी भयानक होना चाहिए।

यह बिजली जो तुम बादलों में चमकते हुए देखते हो, बेटा, यही इन्द्र देवता की दोधारी तलवार है। इसकी चमक और कड़क बड़ों-बड़ों के दिल दहला देती है। पलक झपकते में अपना काम करके फिर आकाश पर इन्द्र देवता के पास वापस पहुँच जाती है। तभी तो बादलों की गरज सुनते ही पापी काँपने लगते हैं!

इन्द्र देवता की यह तलवार लोहे फौलाद की बनी हुई नहीं है, बेटा। लोहे की तलवार को तो जंग भी लग जाता है, धार खुंडी भी हो जाती है, टूट भी सकती है। पर यह निराला हथियार तो एक अनोखी ही धातु का बना हुआ है। कहते हैं कि एक बड़े पहुँचे हुए ऋषि ने भगवान की इतनी एकाग्रचित्त तपस्या की, इतनी तपस्या की कि उनके शरीर का सारा मांस झड़ गया, बस सूखी हड्डियों का ढाँचा रह गया। इन पवित्र हड्डियों से, जो हीरे की तरह सख्त और तेज़ और चमकती हुई थीं, भगवान ने एक तलवार बनाई और वह इन्द्र देवता को सौंप दी कि जहाँ कहीं पाप और अन्याय को बढ़ता हुआ देखें, इस आसमानी तलवार से उनको नष्ट कर दें।

यह तो तुमने सुना ही होगा, बेटा, कि बिजली काले नाग पर गिरती है। भला क्यों? इसलिए कि ज़हरीले नाग पिछले जन्म में पापी और ज़ालिम थे जिन्होंने दूसरों को डसकर दुःख पहुँचाया और दुनिया में ज़हर फैलाया। इसी से तो यह सज़ा है कि इस बार भगवान ने इन्हें साँप के रूप में पैदा किया है। मगर बिजली सिर्फ साँपों पर ही नहीं, नीच और दुष्ट और विष-भरे इन्सानों पर भी गिरती है। भगवान शिव की भाँति डसते रहते, ऊँची पगड़ियों और अमीरी ठाटबाट से धोखा नहीं खाती। वह मन के भीतर की सारी अपवित्रता और पाप को देख सकती है। और जब इन्द्र देवता की तलवार का वार पड़ता है, तो वह ऊँचे-ऊँचे वृक्षों की डाली चीरती हुई पापियों की गर्दन तक

हुए थे। बरखा का कोई ठिकाना नहीं, बेटा, कौन जाने कब फिर झड़ी लग जाय। और हुआ भी यही। दो चार घंटे तो खुला रहा, फिर वह घटाटोप छाया कि दिन में रात जैसा अंधेरा हो गया। साथ में बड़ी-बड़ी बिजली ऐसी चमकने लगी जैसे अंधेरे में कोई तलवार चला रहा हो, और बादल ऐसे गरजने लगे जैसे तोपें छूट रही हों। फिर एकदम मूसलाधार बारिश शुरू हो गई, बिल्कुल ऐसी जैसी आज हो रही है।

गांव के कितने ही आदमी बाहर निकले हुए थे। जो कहीं पास ही थे, वे तो भीगते-भागते गांव की तरफ दौड़े। जो दूसरे गांव गए हुए थे, वे वहीं ठहर गए। पर चार आदमी ऐसे थे जो निकले तो थे अलग-अलग, मगर एक-एक करके इसी नीम की छाया में पहुंच गए। या यूं कहो कि उनकी किस्मत उन्हें यहां खींचकर ले आई।

इन चारों में से तुमने तो किसी को क्या देखा होगा, बेटा। उन दिनों तुम तो शायद पैदा भी नहीं हुए थे। फिर भी शायद इनमें से एक का नाम तो सुना होगा। यह जो आजकल हमारे जमींदार हैं न, इनका बड़ा भाई था ठाकुर हरनामसिंह। बड़ा तगड़ा और रंगीला जवान था। यह चकला सीना, बड़ी-बड़ी रोबदार मूंछें। शादी नहीं हुई थी, आसपास के ठाकुरों की कितनी ही बेटियां उसके नाम पर कुंवारी बैठी थीं। गांव में जभी घोड़े पर सवार होकर निकल जाता तो लड़कियां टंगे किवाड़ों के पीछे छिप छिपकर झांकतीं। जबान का भी बड़ा मीठा था, बोलता था ऐसा कि सुननेवाले पर बस जादू सा हो जाए।

अरे न जाने मेरी आंखों को क्या हो गया है। बेटा! भर आ रही हैं

हां, तो वह था जमींदार का बेटा, मगर प्रजा से हमेशा मीठा बोल ही बोलता था। इनाम-इकराम भी बहुत देता था। गांव-भर के लोग उसकी इज्जत करते थे। कहते कि जमींदार हो तो हरनामसिंह जैसा हो। शिकार का बड़ा शौक था उसे। उस दिन भी घोड़े पर सवार होकर मुर्गाबियों के शिकार को निकला था, पर लौटकर पहुंचा नहीं

कि उसे गांव के बाहर अछूतों की बस्ती में शरण मिल गई है। और यह सुनकर पंडित ने कहा कि यह कोई अचम्भे की बात नहीं है, क्योंकि भगवान की दृष्टि में पापी और अछूत बराबर ही है।

दूसरा, वहाँ पेड़ के नीचे, साहूकार मूलचन्द था जो रहता था राजापुर में, मगर जिससे लेन-देन हमारे गाँव वालों का भी बहुत चलता रहता था। जब भी ज़रूरत पड़े उसके पास चले जाओ, रुपए का प्रबन्ध कर ही देता था। यह और बात है कि ब्याज कड़ा लेता था और पहले बरस का ब्याज तो रकम में से पहले ही निकाल लेता था। मगर सब कहते, "यह तो साहूकारी का नियम ही है, इसका क्या रोना। मूलचन्द बात तो बड़ी भलमनसाहत से करता है और आड़े वक्त काम भी आता है..." वह दीन-धर्म के कामों में हमेशा बढ़ चढ़कर हिस्सा लेता। यज्ञ हो, पूजा हो, पाठ हो, कीर्तन हो, हवन हो—हर बात में सबसे बड़ी रकम चन्दे की उसी से मिलती थी। दान धर्म का ढंग बहुत न्यारा रहता था। मोतीराम सुनार की बेटी चंदा को जब गाँव वालों ने निकाल दिया तो मूलचन्द महाजन ने पंडित को बहुत शाबाश दी और कहा—"पंडितजी, तुमने तो फिर भी नर्मी बरती। हमारे गाँव की कोई छोकरी ऐसा करती तो टाँगें तोड़ देते हम, उसकी टाँगें!" एक और बात मूलचन्द की यह थी कि वह कपड़े हमेशा नये ही उजले पहनता था, जैसे अभी धोबी के घर से धुलकर आए हों। महीन मलमल का बेल लगा हुआ कुर्ता, आस्तीनों पर चुन्नट पड़ी हुई, और सफेद चिट्टी धोती। इत्र भी बहुत लगाता था, दूर से पता चल जाता कि महाजन आ रहा है। कहने वाले यह भी कहते थे कि उसका पसीना बड़ा बदबूदार है इसीलिए इतना सारा इत्र लगाता है। एक दिन किसी ने उससे कहा—"महाजन, यह तुम्हारे कपड़े हर वक्त इतने उजले कैसे रहते हैं? दिन में दो तीन बार बदलते होगे।" इस पर वह हँसकर बोला—"यह धोबी की धुलाई की बात नहीं है, भैया। यह मन की सफाई है। और तुम जानो, मन उजला तो तन उजला, तन उजला तो

मन वाला।"

सीधा यहाँ रहमत ख़ान पटवारी था, बेटा। अब तो पटवारियों पटवारियों की वह पुरानी बात रही नहीं, मगर उन दिनों तो यूँ समझो कि रहमत ख़ान हमारे गाँव का बादशाह जार्ज पंचम, बड़ा लाट, छोटा लाट और कलक्टर साहब, सब-कुछ ही था। ज़मीनों का नापना, दाख़िल-ख़ारिज, सब काम इसी के हाथ में होते थे। गाँव वाले ठहरे अनपढ़, जैसे साहूकार के कहने पर उसके कागज़ पर अँगूठा लगा देते थे वैसे ही पटवारी के कहने से स्टाम्पों और सरकारी कागज़ों पर अँगूठा लगा देते थे। ज़मीनों के बारे में जो काम भी होता वह रहमत ख़ान खुशी से कर देता और काम हो जाने पर वे भी उसे खुश कर देते। अब इसे चाहे रिश्वत समझ लो या हक़ और समझ लो, मगर वैसे बड़ा ही शानदार आदमी था। बड़ी लम्बी दाढ़ी थी, रोज़ेनमाज़ का बड़ा पाबन्द था, गाँव की मस्जिद में पाँचों वक्त हाज़िरी देता था। एक बार हज भी कर आया था और इस साल फिर हज को जाने की बात कर रहा था। और इसी-लिए इस साल काम कराने के लिए अब किसानों को ज़रा ज्यादा रक़म देनी पड़ती थी। दो बीवियाँ थीं और दोनों को वह बड़ा कड़ा पर्दा करवाता था ख़ासकर छोटी को, जो मुश्किल से बीस-बाईस बरस की होगी और उसकी बेटी लगती थी। जात का पठान था, इसलिए दिमाग ज़रा गर्म था। वैसे भी तगड़ा तो था ही, एक दिन ताव में आकर नूर-दीन जुलाहे को थप्पड़ मार दिया था, क्योंकि उसने अच्छी तरह खुश नहीं किया था, तो वह तीन दिन खाट पर पड़ा रहा। ऐसे ही एक दिन एक कुम्हार पर गुस्सा आ गया तो उसे ज़मीन पर दे मारा। मगर ऐसा वह छोटी ज़ात वालों के साथ ही करता था। ज़मींदार साहब, चौधरी रहीम, साहूकार से वह अदब-सम्मान से बात करता था और जब कभी गिरदावर, नायब तहसीलदार, थानेदार, या कोई दूसरा अफ़-सर दौरे पर आ निकलता तो उनके स्वागत में वह इतनी दौड़धूप करता कि सब कहते, "रहमत पटवारी है बड़ा दिल वाला!' और उसकी

पहुँच भी देखो कितने बड़े बड़े अफसरों तक ...”

हाँ, तो ये चारों पेड़ तले खड़े भगवान् से प्रार्थना कर रहे थे कि बारिश रुक जाय। उस दिन गरज चमक भी बहुत ही ज़ोरों पर थी। एक बार बिजली जोर से चमकी तो वे क्या देखते हैं कि सामने पगडंडी पर रुल्दू चमार और वह सुनार की लौंडिया चदा जिसे उन्होंने गाँव-निकाला दे रखा था, दोनों पानी मे सराबोर उस पेड की तरफ चले आ रहे हैं।

हा बेटा, यह बताना तो मैं भूल ही गई थी कि बूढ़ा रुल्दू चमार था तो जात का अछूत, पर क्योंकि गाववाले सब उससे ही जूते बनवाते थे इसलिए गाँव के सारे बच्चे उसे रुल्दू काका रुल्दू काका कहते थे। जिस दिन चन्दा को गाव से निकाला गया, वह अछूतों की बस्ती में से अपने बच्चे को लिए रोती हुई जा रही थी। रुल्दू ने देखा तो कहा, “बेटी इस हालत मे तू कहा जायगी? जब तक तेरे बाप का गुस्सा ठडा हो, तू मेरे यहा ठहर जा।” अंधा क्या चाहे दो आखें, और डूबते को तिनके का सहारा। सो चन्दा रुल्दू चमार के टूटे-फूटे झोपड़े में रहने लगी। उसके बाप ने जब यह सुना, तो उसने भी कहा, “चलो अच्छा ही हुआ। रुल्दू है तो चमार, मगर अपनी जान-पहचान वाला है और वैसे आदमी भी अच्छा है। इधर-उधर मारे-मारे फिरने मे तो यही अच्छा है कि चन्दा उसके ही हा रहे।” मगर बहुत से ऊची जाति वाले ऐसे भी थे जो कहने लगे कि अछूत के हा रहने से तो अच्छा था, चन्दा झील में डूब कर जान दे देती। और कई बिगड़े दिल नौजवानों का बस चलता तो वे रुल्दू का झोपड़ा जलाकर राख कर डालते। वह तो बड़े बूढ़ों ने उन्हें रोक लिया, और फिर बारिश भी इतने ज़ोर से हो रही थी कि किसी का बाहर निकलना ही मुश्किल था। जब आसमान फाड़कर इतना पानी बरस रहा है, तो आग कहा लग सकती है?

मैंने कहा न, बेटा, यह सब भगवान की लीला है। बरखा ने रुल्दू

महल खड़ा है जो एक कोने में तुम भी खड़े हो जाओगे ?"

और फिर उसने ठाकुर हरनामसिंह से कहा—"ठाकुर साहब, इन्हें यहां न आने देना चाहिए, नहीं तो हम सब मारे जाएँगे।"

इस पर पटवारी रहमतअली खान बोला—"क्यों पंडितजी, क्या खतरा है ?"

पंडित बोला—"तुम नहीं जानते खान साहब! धर्म-शास्त्रों में लिखा है कि बिजली पापी और अपवित्र लोगों पर गिरती है। इनमें से एक अछूत है, दूसरी कलंकिनी। अगर ये यहां आ गये, तो समझो साथ में हमारी भी मौत आई।"

पटवारी बोला—"जल तू जलाल तू, आई बला को टाल तू' पंडितजी, ऐसा है तो इनको पास भी न फटकने देना चाहिए।"

"हां, और क्या," महाजन जल्दी से बोला। "जान थोड़े ही देनी है इनके लिए।"

चन्दा, जो टकटकी बांधे पागलों की तरह ठाकुर हरनामसिंह को घूरे जा रही थी, अब सर्दी के मारे कांपने लगी। उसकी यह हालत देखकर रुल्दू ने एक बार फिर मिन्नत की—"सरकार, लौंडिया को कंपकंपी चढ़ रही है। निमोनिया होकर मर जायगी। इसका बच्चा तो पहले ही झोंपड़े की दीवार के नीचे दबकर मर चुका है।"

चन्दा अब भी ठाकुर को घूरे जा रही थी, मगर उसने दूसरी तरफ मुँह फेर लिया और अपनी बन्दूक खोलकर उसकी नली में से देखने लगा, जैसे इस बातचीत से उसका कोई सरोकार न हो। और बेटा, था भी ठीक। वह ठहरा ज़मींदार, उसे इन नीच लोगों के मरने-जीने से क्या ?

चन्दा के बच्चे के मरने की सुनकर धर्मदास ने कहा—"चलो अच्छा हुआ, पाप की निशानी दूर हुई।"

रुल्दू बोला—"हां पंडितजी, जो होना था सो हो चुका। मैं तो इसीलिए चन्दा को इसके बाप के पास ले जा रहा था कि जिन कारणों

उसकी ये अजीब बातें सुनकर उन सबको पक्का विश्वास हो गया कि वह पागल हो गई है। दूर बादलों में एक बार फिर गड़गड़ाहट हो रही थी, जैसे बिजली गिरने की तैयारी हो। चन्दा को एक कदम और बढ़ आते देखकर महाजन चिल्लाया—"सरकार, क्या देखते हैं? चलाइये गोली, नहीं तो यह पगली अपने साथ हमें भी ले मरेगी!"

मगर, बेटा, ठाकुर की बन्दूक नहीं चली। इससे पहले भगवान की तलवार चल गई। अभी वह बन्दूक का घोड़ा दबाने वाला ही था कि ऐसी भयानक चमक हुई जैसे सूरज देवता धरती पर आ गये हों। रुल्दू और चन्दा ने डर के मारे आँखें बन्द कर लीं। एक तड़ाखा हुआ, इतने जोर से तड़ाखा, बेटा, जैसे सैकड़ों तोपें एकदम चली हों। धरती काप उठी और धमाके से रुल्दू और चन्दा जमीन पर आ रहे। उन्हें विश्वास हो गया कि बिजली उन पर ही गिरी है

मगर बेटा जिसे भगवान रक्खे, उसे कौन चक्खे? जब उन्होंने आँखें खोलीं तो देखा कि वह नीम का पेड़ चोटी से लेकर जड़ तक बिजली से जला हुआ है और उसके नीचे चार लाशें झुलसी पड़ी हैं। ठाकुर की बन्दूक अब भी उसके हाथ में थी, मगर उसकी नली पर बिजली गिरी थी और वह गलकर इस तरह मुड़ गई थी जैसे मोम की बनी हुई हो ..

तो बेटा, मैं कहती हूँ, इन्द्र देवता की आसमानी तलवार का हम इन्सानों की तलवारें, बन्दूकें भला क्या मुकाबला कर सकती हैं! यह सब हमारे कर्मों का फल है, और क्या? जैसा बोओगे, वैसा ही काटोगे। यह थोड़े ही है कि बीज तो डालो ज्वार के और फसल काटो धान की। संसार में जो कुछ हो रहा है, भगवान शिव की आग यह सब देखती रहती है। वह उजले कपड़ों, ऊँची पगड़ियों, या अमीरी ठाटबाट से धोखा नहीं खाती। मन के भीतर की सारी अपवित्रता और सारे खोट को देख सकती है। और सो, जब इन्द्र देवता की तलवार का वार पड़ता है तो वह ऊँचे-ऊँचे दरख्तों की छाती चीरती हुई पापियों की गर्दन तक जा पहुँचती है।

मैंने जो कुछ कहा है, तुम इसे एक पगली बुढ़िया की बड़ समझ रहे हो न, बेटा? तुम सोचते हो कि जब वे सब वहीं मर गये, तो फिर मुझे यह सब हाल कैसे मालूम हुआ? पर मैंने जो कुछ कहा, वह झूठ नहीं है, बेटा।

हां, बारिश भी कम हो गई। अब बाहर जाओ तो बाजार में वैद्यजी की दुकान पर होते जाना। उनसे कहना, आज मेरी आंखों में से फिर पानी बह रहा है। कोई दवा दे दें। कहना, तुम्हें पगली चन्दा ने भेजा है।

अरे तुम तो पहले ही चले गये, मेरी ऊटपटांग बातों से उकता कर! अरे हां, तुमने भी मेरी कहानी नहीं सुनी। कोई मेरी कहानी नहीं सुनता। मैं पगली हूँ न...

बारिश थमने तक तो ठहरे होते बेटा!

दीवार

"मेजर रफीक मारा गया!"

"मेजर रफीक मारा गया!"

हर आदमी की ज़बान पर यही शब्द थे। हिन्दुस्तानी सेना के अफसर और सिपाही, गुरेज घाटी के रहने वाले काश्मीरी और वन गाव के लुटे खसुटे मुसलमान शरणार्थी, जो नामधारी मुजाहिदों के हाथों अपने घर-बार, माल-असबाब और अपनी स्त्रियों की लाज गँवा कर आये थे · सब इसी खबर की चर्चा कर रहे थे।

"मेजर रफीक मारा गया!"

दो दिन हुए, हिन्दुस्तानी फौज की एक टुकड़ी ने रात के अंधेरे से लाभ उठाकर नदी के किनारे-किनारे जाकर दुश्मन की एक पहाड़ी चौकी पर छापा मारा था। कई हमलावर मरे थे और कई घायल होकर भाग खड़े हुए थे, जिनमें एक अफसर भी था। आज एक बूढ़ा काश्मीरी किसान, जो उस इलाके में घास काटने के बहाने गया था, यह खबर लाया था कि वह अफसर जो घायल हुआ था, मेजर रफीक ही था और जख्मी होने के चौबीस घण्टे बाद मर गया था। यह खबर उसी हमलावर फौज के कई सिपाहियों की जबानी सुनी थी, जो अपने अफसर की मौत पर शोक प्रकट कर रहे थे।

"मेजर रफीक मारा गया!"

इस खबर से सारे कैम्प में हलचल मची हुई थी। हर अफसर

उसने सोचा—"रफीक मेरा दुश्मन था। वहशी हमलावरों को साथ लेकर काश्मीर पर हमला करने आया था। हिन्दुस्तानी फौज के मुका-बले में लड़ रहा था। अगर वह मारा गया तो क्या हुआ? उसने अपने किए की सजा पाई। मुझे क्या जरूरत है कि खाहमखाह मुँह फुला-कर बैठा रहूं। मुझे तो खुशी होनी चाहिए, हँसना चाहिए। कम-से-कम मुस्कराना तो चाहिए ·· ··।"

पर कोशिश करने पर भी उसके चेहरे पर मुस्कराहट के कोई चिन्ह उत्पन्न न हुए। तो क्या उसके दिल में रफीक का प्रेम और दोस्ती का भाव अब तक चोरों की तरह छिपा बैठा था?—अब तक?—उस तमाम खून, तबाही और बरबादी के बावजूद जो रफीक जैसे पाकिस्तानी मुसलमानों के हाथों निर्दोष और निस्सहाय हिन्दुओं पर आई थी? आग के उन शोलों के बावजूद जिनमें राजेन्द्र का घर रावलपिंडी में जलकर खाक हो गया था? उस पाकिस्तानी छुरे के बावजूद जो राजेन्द्र के बूढ़े पिता की पीठ में घोंपा गया था! उन खून की नदियों के बाव-जूद जो मिलकर हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के बीच एक पार न की जा सकने वाली खाई बन गई थीं? ··नहीं, नहीं, रफीक उसका दोस्त नहीं हो सकता। उसकी मौत पर उसे जरा भी दु:खी न होना चाहिए। उसे खुश होना चाहिए, हँसना चाहिए, कम-से-कम मुस्कराना तो चाहिए। पर बहुत कोशिश करने पर भी उसके चेहरे पर मुस्कराहट के कोई चिन्ह उत्पन्न न हुए ··

अपने हृदय की धड़कन में बराबर एक ही आवाज सुनता रहा—रफीक, रफीक, रफीक! और स्मृति की धारा पर बहता हुआ वह बहुत दूर अतीत के भूले हुए काल में खो गया।

रफीक!

यह केवल उसका नाम ही नहीं था बल्कि वह सचमुच राजेन्द्र का रफीक—साथी—था। बचपन का साथी, पड़ोसी और दोस्त। उसके नाम के साथ बचपन की कितनी सुखद स्मृतियां सम्बन्धित थीं।

होते तब देखते।" और फिर दोनों एक साथ हँस पड़ते। क्या ज़माना था वह भी!

रफ़ीक और राजेन्द्र, राजेन्द्र और रफ़ीक।

सूबेदार मेजर साहब का तो शुरू से ही रफ़ीक को फ़ौज में भेजने का इरादा था। वे चाहते थे कि रफ़ीक मैट्रिक तक पढ़कर बादशाही कमीशन की दरख़्वास्त दे दे, किन्तु इस तरह राजेन्द्र का साथ छूटता था। इसलिए कह-झगड़कर रफ़ीक ने बाप को कालिज की पढ़ाई के लिए राज़ी कर लिया। यह भी समझाया कि बी० ए० होने के बाद बादशाही कमीशन मिलने की सम्भावना अधिक हो जायगी और जमादार के बजाय वह लेफ्टिनेन्ट का पद पा सकेगा। यह बात सूबेदार मेजर साहब की समझ में आ गई और रफ़ीक को राजेन्द्र के साथ और चार साल बिताने का मौक़ा मिल गया।

कालिज के दिन भी क्या बेफ़िक्री के दिन थे। साल-भर में नौ महीने क्रिकेट खेलते, टूर पर जाते, सैर करते और इम्तहान से तीन महीने पहले पढ़ाई शुरू कर देते। विषय भी दोनों ने एक ही लिए थे। रफ़ीक हिसाब में कमज़ोर था, राजेन्द्र उसकी मदद करता। राजेन्द्र साहित्य में कमज़ोर था, रफ़ीक उसे शेक्सपियर और शॉ का मतलब समझाता। गर्मी की छुट्टियाँ भी साथ ही बिताते। कभी शिमले में राजेन्द्र के मामा के यहाँ, तो कभी रफ़ीक के फूफा के यहाँ मरी में। एक बार दोनों मिलकर काश्मीर गए। हाउस बोट में ठहरे। शिकारे में बैठकर डल की सैर की, गुलमर्ग और खिलनमर्ग होते हुए अफ़रवथा की बर्फ़ीली झील देखने चढ़े। वापिसी पर रफ़ीक ने कहा—"यार मरने से पहले एक बार और आयेंगे।"

बी० ए० के इम्तहान के बाद जब फ़ौज के लिए कम्पिटीशन में बैठने का समय आया तो रफ़ीक ने राजेन्द्र से कहा—"छोड़ो यार, कौन फ़ौज में लैफ्ट-राइट करेगा। हम तुम लाहौर में एम० ए० करेंगे।" राजेन्द्र ने जवाब दिया—"दिमाग़ फिर गया है? मैंने तो इसी वजह से

ने धौल जमाते हुए कहा—"क्यों बे, प्रोपेगेंडा करता है हमारे खिलाफ ?"

और फिर दोनों दोस्तों में तय हुआ कि रफीक का हनीमून उस समय तक स्थगित रहेगा जब तक राजेन्द्र का भी विवाह न हो जाय। बात उसकी भी पक्की हो चुकी थी और सितम्बर में विवाह की तिथि निश्चित हुई थी। इसके बाद तुरन्त ही दोनों जोड़े हनीमून के लिए इकट्ठे काश्मीर जायँगे। "देख बे, मेरे बिना मत चल देना," राजेन्द्र ने अगले दिन खाना खाते समय याद दिलाया। और रफीक ने कहा—"नहीं यार, अकेले जाने में क्या मजा है। पर सितम्बर में महीने भर की छुट्टी का अभी से इन्तजाम कर लेना चाहिए।"

और सितम्बर में दूसरा महायुद्ध शुरू हो गया। राजेन्द्र को विवाह स्थगित करना पड़ा क्योंकि उसकी रेजिमेन्ट को तुरन्त मलाया भेज दिया गया। रफीक को ट्रेनिंग के काम पर लगा दिया गया। जब अंग्रेजी फौजें मलाया से पीछे हटीं तो राजेन्द्र बर्मा के मोर्चे पर भेजा गया। इस बीच रफीक अफ्रीका पहुँच चुका था। अलहालमीन की लड़ाई के बाद रफीक मेजर बना दिया गया। कोहीमा के पहाड़ी मोर्चे पर राजेन्द्र को मेजर का पद मिला। दोनों ने अपनी-अपनी जगह नाम पाया। रफीक ब्रिगेड मेजर की हैसियत से फौजी दाँव-पेच (Strategy and Tactics) का विशेषज्ञ माना गया। राजेन्द्र ने गोलों और गोलियों की बौछाड़ में दुश्मन पर जवाबी हमले करके अपने योग्य कमाण्डर होने का प्रमाण दिया।

लड़ाई खत्म होने के कुछ हफ्ते बाद संयोगवश दोनों मित्र दिल्ली रेलवे स्टेशन पर मिल गए। रफीक कुछ दिनों के लिए रावलपिंडी [illegible]कर आ रहा था और राजेन्द्र शादी के लिए जा रहा था। बहुत कोशिश करने पर भी रफीक को विवाह में सम्मिलित होने की छुट्टी न मिल सकी, क्योंकि उसकी रेजिमेन्ट जापान भेजी जा रही थी। अस्तु, स्टेशन पर वेटिंग-रूम में दोनों मित्र कई वर्ष के बाद मिले तो एक

हमारे जीडरों का ! इसकी उम्मीद कम ही नजर आती है।"

राजेन्द्र ने कुछ सोचकर कहा—"यह काम फौज को करना पड़ेगा। ये लातों के भूत बातों से नहीं मानेंगे। क्यों, क्या कहते हो?"

पाँचवें पेग का अन्तिम घूँट लेते हुए रफीक ने बात के सिलसिले को एक ओर ही रख दिया—"तुम्हें काहिरा की एक घटना सुनाता हूँ। जब हमारी रेजीमेन्ट मोर्चे से दो हफ्ते के लिए आराम करने को वहाँ भेजी गई तो हमारा कैम्प शहर के बाहर पिरामिड के पास लगा हुआ था। अच्छा-खासा इन्तजाम था। खेमों की लाइनें दूर तक लगी हुई थीं। और, हर आठ खेमों के बीच पीने और नहाने के लिए पानी के दो नल लगे हुए थे। समझे तुम? दो नल!"

राजेन्द्र ने छठा पेग उंडेलते हुए कहा—"हाँ हाँ, समझ गया।"

"तुम खाक नहीं समझे। दो नल! क्या समझे . ? दो नल ! और दोनों पर तख्तियाँ लगी हुई थीं। जानते हो, उन पर क्या लिखा था? बताओ उनपर क्या लिखा था?"

"मुझे क्या पता? तुम ही बताओ न!"

"एक पर लिखा था—'हिन्दुओं के लिए', दूसरी पर लिखा था—'मुसलमानों के लिए'...क्या समझे?"

राजेन्द्र ने, जो छः पेग पी चुका था, अपने गिलास को जमीन पर दे मारा—वह चूर-चूर हो गया—"बदमाश कहीं के। सफेद मुँह के बन्दर।"

रफीक क्यों पीछे रहता। उसने भी अपना गिलास धरती पर दे मारा और बोला—"अब समझे, ये किस तरह हमें अलग-अलग रखते हैं।"

रिफ्रेशमेण्ट-रूम में बैठे हुए सब लोग और बैरे इन दोनों की ओर देखने लगे। मगर किसी की हिम्मत न पड़ी कि फौजी अफसरों से जा कर उलझे।

बैरे ने चुपके-से दो और गिलास सामने लाकर रख दिए। मानो

अने और मुसलमानों के लिए अलग।"

और फिर दोनों पर कई मिनट के लिए उदास खामोशी छाई रही।

राजेन्द्र दाँत भींचकर बोला—"दो नल!"

रफीक मानो नींद से चौंक कर बर्राया—"दो पानी के नल!"

राजेन्द्र ने किसी अनदेखे अंग्रेज को मानो मुँह चिढ़ाते हुए कहा—"यह हिन्दुओं के लिए है।"

रफीक ने नफरत से मुँह बिगाड़कर कहा—"यह मुसलमानों के लिए है।"

"दो नल!" राजेन्द्र ने मानो एक महत्त्वपूर्ण घोषणा की।

"दो पानी के नल!" रफीक ने 'पानी' पर जोर देते हुए इस घोषणा की पुष्टि की।

फिर दोनों ने आठवाँ पेग पीकर बैरे को आर्डर दिया कि वह और व्हिस्की लाए। इतने में एक मोटा, लाल मुँह का अंग्रेज आया और उनके सामने की मेज़ पर बैठकर अत्यन्त आदेशात्मक स्वर में चिल्लाने लगा—"ब्वॉय! ब्वॉय!"

उसको देखते ही दोनों की आँखें नफरत और गुस्से से लाल हो गईं।

"देखते हो?" राजेन्द्र बोला।

"हूँ!" रफीक गुर्राया।

"हम क्यों इन्हें निकाल बाहर नहीं करते?"

"यही करना पड़ेगा, फौज को यह इन्कलाबी कदम उठाना पड़ेगा।"

और फिर रफीक की ट्रेन का वक्त हो गया था। वह कलकत्ता होता हुआ जापान चला गया था और राजेन्द्र रावलपिंडी। विदा होते समय एक बार दोनों दोस्तों ने फिर वादा किया था कि पहली छुट्टी में दोनों अपनी-अपनी पत्नियों को लेकर काश्मीर जायँगे।

राजेन्द्र का विवाह धूमधाम से हुआ किन्तु अपने मित्र की अनुपस्थिति में उसे कोई खास मजा न आया। बार-बार उसका जी चाहता

रफीक ने स्टाफ कॉलेज के कोर्स के लिए लिखी थी। समर्पण उसी के नाम से था—"राजेन्द्र के नाम, जो एक योग्य सैनिक अफसर होने के अतिरिक्त एक अनमोल मित्र भी है" राजेन्द्र जानता था कि रफीक युद्ध-कला में प्रवीण है इसलिए उसी समय पन्ने उलटने लगा। एक पृष्ठ पर उसने पढ़ा—

"युद्ध भी पहलवानों की कुश्ती के समान है। केवल ताकत और जोर से ही विजय प्राप्त नहीं हो सकती, दिमाग भी इस्तेमाल करना होता है, चालाकी से भी काम लेना होता है। आधी जीत तो इसी में है कि शत्रु को अचम्भे में डाल दिया जाय। उसे यह न ज्ञात हो सके कि तुम्हारी अगली गतिविधि क्या और किधर होगी। वह यह सोचता ही रहे कि आक्रमण पूर्व से होगा या पश्चिम से, और इस बीच में तुम्हारा आक्रमण उत्तर से हो जाय"

तीन हफ्ते के बाद रफीक का पत्र जापान से आया—

"प्यारे राजेन्द्र,

"सो जिस घड़ी का खतरा था वह आ पहुँची। हिन्दुस्तान का बँटवारा हो गया, पाकिस्तान कायम हो गया। फौज का भी बँटवारा हो रहा है। मुझसे पूछा गया है कि मैं हिन्दुस्तान में रहना चाहता हूँ या पाकिस्तान जाना चाहता हूँ। मैं मुसलमान हूँ इसलिए मुझसे आशा की जाती है कि मैं पाकिस्तान की फौज में शामिल हो जाऊँ। लेकिन फिर सोचता हूँ कि तुम्हारा साथ छूट जायगा। उधर माँ-बाप का ख़याल है जो बूढ़े हो चुके हैं और इस उम्र में चाहते हैं कि मैं उनके पास ही रहूँ। तुम सलाह दो कि क्या करूँ?"

राजेन्द्र रफीक की मानसिक उलझन समझता था। उसने तुरंत लिखा—

"जी तो मेरा यही चाहता है कि तुम हिन्दुस्तान में ही रहो,

[illegible] इस विचार से पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दोनों का भला इसी में है कि तुम्हारे जैसे अच्छे अफसर पाकिस्तानी फ़ौज में रहें। देखने [illegible] अलग अलग दलों में रहकर भी हमारी दोस्ती और प्रेम बना रहा तो शायद इसी तरह हिन्दुस्तान और पाकिस्तान भी दोस्त रह सकें। भगवान जानता है, दोनों फौजों को किसी दिन एक होकर शायद दुश्मन के खिलाफ लड़ना पड़े [illegible] उस दिन वाली बात याद है न? दिल्ली स्टेशन का रिफ्रेशमेण्ट-रूम ...।"

पन्द्रह अगस्त। आजादी का दिन। किन्तु राजेन्द्र अपने माता-पिता के बारे में चिन्तित था, क्योंकि सारे पंजाब में मारकाट का बाजार गरम था। न जाने उन पर रावलपिंडी में क्या बीत रही थी। फिर भी आशा [illegible] था कि रफीक के बाप सूबेदार मेजर साहब उन पर कोई आंच न आने देंगे। दर्जनों तार दिए मगर कोई जवाब न आया। जानने वाले फौजी अफसरों को, जो वहां नियुक्त थे, लिखा कि किसी तरह उसके घरवालों को वहाँ से सहीसलामत निकालकर दिल्ली या हिन्दुस्तान के किसी शहर में हवाई जहाज द्वारा भेज दिया जाय। जवाब आया कि तुम्हारे घरवालों को दिल्ली भेज दिया गया है। राजेन्द्र दिल्ली पहुँचा और पता चलाकर मिला। माँ बेटे को गले से लगाकर फूट फूटकर रोने लगी। राजेन्द्र ने पूछा—"और पिताजी? [illegible] कहाँ हैं?" तब मालूम हुआ कि डाक्टर साहब एक दंगाई की गोली का शिकार हो चुके थे।

राजेन्द्र की आँखों में खून उतर आया—"और रफीक के बाप सूबेदार मेजर साहब? उन्होंने पिताजी को बचाने के लिए कुछ नहीं किया?"

"वह बूढ़े आदमी हैं बेटा! सूझ भी कम पड़ता है। उस अहाते वाली दीवार को जल्दी फलाँग न सके।"

वह दीवार! वह ज़ालिम दीवार! वह हत्यारी दीवार! राजेन्द्र की इच्छा हुई कि तुरन्त जाकर उस दीवार की एक-एक ईंट उखाड़ डाले। पर वह रावलपिंडी से बहुत दूर था—बहुत दूर! और रास्ते में उससे भी ऊँची, न दिखाई पड़ने वाली दीवार खड़ी थी।

उसने कोशिश करके अपनी बदली दिल्ली करा ली जिससे माँ के पास रह सके।

कराची से एक तार पूना होता हुआ आया—"मैं जापान से लौट आया हूँ। अपने घर वालों की खबर दो और जालन्धर जाकर अपनी भावज और उसके घरवालों को बचाओ और यहाँ भिजवा दो।

—रफीक़"

राजेन्द्र का पुराना बर्मा वाला ब्रिगेडियर जालन्धर में था। वह उसके पास गया और जीप लेकर रफीक की ससुराल पहुँचा। लेकिन घर में पश्चिमी पंजाब से आए हुए हिन्दू-सिख शरणार्थी ठहरे हुए थे। सारे शहर में कोई मुसलमान बाकी नहीं था। पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि वे लोग सब एक काफिले के साथ पाकिस्तान चले गए हैं। यही सूचना उसने रफीक़ को भेज दी। उसको आशा थी कि वे लोग सकुशल पहुँच गए होंगे।

किन्तु कुछ दिनों के बाद रफीक का पत्र मिला। कुछ लाइनें जल्दी में घसीटी हुई थीं—"तुम्हारी भावज पाकिस्तान नहीं पहुँच सकी। न जाने जिन्दा है या मारी गई। दुआ करो कि जिन्दा न हो। तुम पहले ही बिछुड़ गए। अब जिन्दगी में मेरे लिए कोई दिलचस्पी बाकी नहीं रही। सिर्फ पुरानी यादें बाकी रह गई हैं। तुम भी कभी याद कर लिया करना। यह शायद मेरा आखिरी खत हो।"

अगले दिन अखबारों में खबर छपी कि पाकिस्तान की तरफ से कबायली हमलावरों ने काश्मीर पर हमला कर दिया है। और, न

राजेन्द्र और रफीक, रफीक और राजेन्द्र ।

राजेन्द्र को यह तो ज्ञात था कि हमलावरों के साथ बहुत से पाकिस्तानी सेना के अफसर और सिपाही हैं। वह हर प्रकार के हथियारों से लैस थे और सैनिक टुकड़ियों में संगठित होकर लड़ रहे थे। गुरेज की घाटी से उनको भगा दिया गया था, किन्तु वे अधिक दूर नहीं गए थे। उसको जो सूचनाएँ मिली थीं उनके अनुसार उनका एक गिरोह पूर्व में हब्बा खातून नाम की पहाड़ी के पीछे था और दूसरा गिरोह पश्चिम में किशन गंगा के पार। दोनों ओर से सैनिक गतिविधि की सूचनाएँ आ रही थीं। राजेन्द्र ने दोनों ओर अपनी पहाड़ी चौकियों को सचेत कर दिया था। रात-दिन वे दुश्मन की ताक में रहते थे। नामुमकिन था कि हमलावर गुरेज की घाटी पर फिर से कब्जा करने के लिए एक कदम भी उठा सकें।

और फिर एक रात अचानक उत्तर की ओर एक तेरह हजार फुट ऊँची पहाड़ी पर से हमलावारों की एक टुकड़ी ने आक्रमण कर दिया। रात-भर उसे स्वयं अपने सिपाहियों का हाथ बटाना पड़ा और कुछ घटों के लिए तो वे सारे ही खतरे में पड़ गए। हमलावरों को तो पीछे हटा दिया गया मगर राजेन्द्र के कितने ही आदमी काम आए। रण-पंक्तियों का सारे का सारा नक्शा बदलना पड़ा और राजेन्द्र सोच में पड़ गया कि उत्तर में यह आक्रमण हुआ कैसे, जब कि वे समझ रहे थे कि आक्रमण या तो पूर्व से होगा या पश्चिम से

सहसा उसके मस्तिष्क में याद की एक किरण चमकी और उसने अपना सूटकेस खोलकर एक किताब निकाली जो कपड़ों के नीचे रखी थी। पन्ने उलटने पर ये शब्द उसकी आँखों के सामने थे—

"आधी जीत तो इसी में है कि शत्रु को अचम्भे में डाल दिया जाय। उसे यह न ज्ञात हो सके कि तुम्हारी अगली गतिविधि क्या और किधर होगी। वह यह सोचता ही रहे कि आक्रमण पूर्व से होगा या पश्चिम से, और इस बीच तुम्हारा आक्रमण उत्तर

रफीक की आवाज, उसके दोस्त की आवाज—मगर नहीं, वह उसका दोस्त नहीं हो सकता। उसका दोस्त अपने सिपाहियों को इस मारकाट और विनाश की कभी अनुमति न देता, जो उन्होंने अपने कब्जे के दिनों में गुरेज की घाटियों में किया था और इसके बाद भी कुछ ही दिन हुए चौरावन गाँव में सैकड़ों घर फूँक कर उनको बेघर कर दिया था। नहीं, यह उसका दोस्त रफीक नहीं हो सकता।

और कुछ रातों के बाद जब उसने रफीक के हेड-क्वार्टर पर रात को हमला करने के लिए अपने छः आदमी भेजे तो उसे जरा भी हिचकिचाहट न हुई। उसे दुश्मन को इस पहाड़ी से जरूर हटाना था, नहीं तो उसकी और उसके सिपाहियों की ही नहीं, गुरेज के प्रत्येक निवासी की जान खतरे में थी क्योंकि वहाँ से ही दुश्मन की हलकी तोपें दिन-भर लगातार गोले बरसा रही थीं।

रात का हमला सफल रहा था। रफीक मारा गया था। उसने अपने किए का फल पाया था। युद्ध में भावुकता का क्या काम? यदि तुम चूक गए तो मारे गए। उसे रफीक की मृत्यु का कोई दुःख न होना चाहिए। किन्तु उसे दुःख था। क्योंकि यह एक दोस्त की ही मौत नहीं थी, दोस्ती की मौत थी। बचपन और जवानी की सुन्दर यादों की मौत थी, एकता की मौत थी। रफीक की मृत्यु के बाद राजेन्द्र को ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो अब कोई हिन्दू और मुसलमान आपस में कभी दोस्त न बन सकेंगे। और इस भाव ने उसके हृदय में एक विचित्र शून्य-सा पैदा कर दिया था। क्या यह कभी पूरा न हो सकेगा? रफीक के बिना राजेन्द्र का अस्तित्व, उसका जीवन अधूरा था। राजेन्द्र का हृदय एक अथाह निराशा के सागर में धीरे-धीरे डूबता जा रहा था।

"जनाब!"

एक आवाज ने उसे चौंका दिया। डूबने से बचा लिया।

"जनाब!"

खाकी वर्दी पहने हुए एक नौजवान उसे फौजी सलाम कर रहा था।

थे। तुम बड़े अच्छे बॉलर थे और मैं बैटिंग में फर्स्ट · लेकिन अगर मैं हर मैच में सेन्चुरी न बनाता तो तुम्हारी बाउलिंग किस काम आती? ··फिर वह देहरादून एकेडमी का जमाना याद है?· और वह मेरी शादी? शादी के कपड़ों में मैं कैसा बुद्धू लगता था? और कितनी हँसी हुई थी जब तुमने अपनी भावज का मुँह देखकर कहा था—"बेचारी बच्ची! अफसोस है! तेरी किस्मत भी किस जाँगलू से जोड़ी गई · " " पर यार, मुझे अफसोस है मैं तुम्हारी शादी में न आ सका, नहीं तो पूरा बदला उतारता। और भाभी को खूब-खूब छेड़ता और देहली के रिफ्रेशमेन्ट-रूम की घटना याद है? बहुत पी गए थे उस दिन हम · कितनी धमा-चौकड़ी मची थी। मगर असल में उस लाल मुँह वाले अँग्रेज को देखकर गुस्सा आ गया था साला! उसकी चलती तो हम दोनों को शराब भी अलग-अलग 'हिन्दू मुसलमान' बोतलों से मिलती · और वह मेरी किताब तो मिल गई होगी ·कितनी बार वादा किया था कि दोनों अपनी-अपनी बीवियों को साथ लेकर काश्मीर चलेंगे। और तुम आए भी तो अकेले। बीवी को साथ क्यों नहीं लाए? मैं तो जरूर लाता पर तुम जानते हो · !"

वह काश्मीरी नौजवान बोले जा रहा था—"जनाब, हमें यकीन है कि आप बहादुर अफसरों से हम बहुत-कुछ सीख सकेंगे और काश्मीर भी अपनी नैशनल जम्हूरी फौज बनाएगा ·" और उसके आश्चर्य की कोई सीमा न रही जब लेफ्टिनेन्ट कर्नल ने खड़े होकर निहायत तपाक से एक साधारण लेफ्टिनेन्ट से हाथ मिलाते हुए कहा—"यह सब हो जायगा। मगर यह बताओ कि तुम कॉलेज में क्रिकेट में कैसे थे?"

के तो न मर्द मर्द हैं, और न औरतें औरतें ही।"

"तब तो रानू की बहू का सारी दुनिया में नाम हो जाएगा।"

"और क्या, और साथ में हमारे गाँव का।"

उस दिन पोस्ट ऑफ़िस का हरकारा जब प्रजापुर गाँव में चिट्ठियाँ बाँटने आया तो यह ख़बर सुनी। शहर वापिस जाकर उसने अपने पोस्ट मास्टर को सुनाई। पोस्ट-मास्टर ने अपने पड़ोस में सिविल हस्पताल के डॉक्टर कुन्दनलाल को जा सुनाई, शहर कॉंग्रेस कमेटी के सभापति लाला बंसीधर, जो बवासीर के मरीज़ थे, डॉक्टर के पास अपने लिए दवा लेने आए तो उन्होंने यह ख़बर सुनी। वहाँ से वह सीधे गांधी गार्डन में स्वतन्त्रता उत्सव के सिलसिले में एक सभा का सभापतित्व करने जा रहे थे। रास्ते में उन्हें मुन्शी ब्रजनारायण मिल गए, जो म्यूनिसिपल स्कूल में पढ़ाते थे और साथ में "देश दीपक" दैनिक के स्थानीय संवाददाता भी थे। उन्होंने कहा—"लालाजी, आज भाषण में जो-कुछ कहने वाले हैं, वह पहले से बता दीजिए तो मैं अभी तार दे दूँ, वरना सभा ख़त्म होते-होते देर हो जायगी, फिर कल सवेरे के अख़बार में न छप सकेगी।" लालाजी ने फ़ौरन जेब से निकालकर अपने भाषण का लिखा हुआ खुलासा मुन्शीजी को दे दिया। इधर-उधर की बातों में उन्होंने डॉक्टर से सुनी हुई ख़बर भी मुन्शीजी को सुना दी।

"सच, लालाजी। मगर क्या ऐसा हो सकता है?"

"हाँ भाई, होगा ही। मुझे तो अभी डॉक्टर साहब ने बताया है।"

"तब ज़रूर ठीक होगा। इतना स्पेशल केस है, शायद डॉक्टर साहब ने खुद किया होगा।"

"हाँ, और क्या।"

अगले दिन "देश दीपक" में लाला बंसीधर के भाषण की रिपोर्ट तो न छपी, मगर पहले पृष्ठ पर ही मोटे मोटे अक्षरों में यह ख़बर प्रकाशित हुई—

संवाददाताओं ने फौरन तार खड़खड़ाए और कुछ घंटों मे यह ख़बर सारी दुनिया मे फैल गई। एक सौ पचीस हिन्दुस्तानी अख़बारों और पचपन विदेशी अख़बारों ने इस घटना पर सम्पादकीय लिखे। मशहूर राष्ट्रीय पत्र "कॉम्रेस टाइम्स" ने लिखा कि "एक देशभक्त किसान औरत ने इन जुड़वाँ बच्चों को ठीक पन्द्रह अगस्त के दिन जन्म देकर भारत-माता की सन्तान मे पाँच जानों की बढ़ती ही नहीं की, बल्कि साबित कर दिया है कि भारत के सब किसान आज़ादी का मान करते हैं और दिलोजान से अपनी राष्ट्रीय सरकार के साथ हैं। हम अपने किसान भाई रामू और उसकी धर्मपत्नी लाजो को बधाई देते हैं, और उनके शानदार उदाहरण को कम्यूनिस्टो और सोशलिस्टों के सामने रखना चाहते हैं, जो बातें तो बड़ी बड़ी बनाते हैं, मगर कर्मभूमि में एक चुहिया का बच्चा भी पैदा नहीं कर सकते।"

साप्ताहिक "देश सैनिक" ने एक जोशीले सम्पादकीय में लिखा कि "पाँच जुड़वाँ बच्चे पैदा करके हमारी बहन लाजो ने भारत की लाज रखी है, वरना आज तक कैनेडा के सामने हमारी गरदन शर्म से झुकी हुई थी।"

कैनेडा से ख़बर आई कि डीओन घराने की पाँचों जुड़वाँ लड़कियों ने प्रजापुर के जुड़वाँ बच्चों को मुबारकबाद का तार भेजा है।

"भारत भीष्म" ने लिखा, "कैनेडा वाले यह न समझें कि वे हम भारतवासियों की बराबरी कर सकते हैं। पाँच जुड़वाँ बच्चों का जन्म देना कोई बड़ा कमाल नहीं। मगर वे यह मत भूलें कि हमारी एक माँ ने जिन पाँच जुड़वाँ बच्चों को जन्म दिया है, उनमें एक न दो, पर तीन लड़के हैं।"

एक और दैनिक "राष्ट्रीय सेवक" ने लिखा कि "अगर हम सब भारत के रहने वाले रामू और लाजो के पदचिह्नों पर चलें तो बहुत जल्द भारतवासियों की गिनती इतनी हो जायगी कि हम सारी दुनिया पर छा सकते हैं। हम सरकार को सलाह देते हैं कि योग्य डाक्टरों को एक

किया। प्रेजीडेण्ट राजेन्द्रप्रसाद ने रामू को बधाई का तार भेजा। हिन्दू महासभा के एक लीडर ने एक बयान में कहा कि "जब तक भारत में रामू जैसे पुरुष और लाजो-जैसी स्त्रियाँ हैं, हिन्दू धर्म, हिन्दू जाति और हिन्दू संस्कृति पर कोई आँच नहीं आ सकती।"

पाकिस्तान के एक पत्र "सब्ज़ परचम" ने लिखा कि "भारत में इकट्ठे पाँच-पाँच बच्चों का होना पाकिस्तान के लिए ख़तरे की घंटी है। पाकिस्तान के मर्द और औरतें काफ़िरों के इस चैलेंज का क्या जवाब दे रहे हैं?"

न्यूयार्क से ख़बर आई कि अमरीका के चार डॉक्टर हवाई जहाज से रामू और लाजो की डॉक्टरी परीक्षा करने हिन्दुस्तान आ रहे हैं। मास्को के एक पत्र ने इस ख़बर पर आलोचना करते हुए लिखा कि रामू और लाजो ही को नहीं, हिन्दुस्तान की सारी जनता को अमरीकी डॉक्टरों की साम्राज्यी चालबाज़ियों से होशियार रहना चाहिए।

लखनऊ, नागपुर और बम्बई के तीन ज़च्चाघरों के नाम "लाजो मेटर्निटी होम" रखे गए।

अमरनाथ की यात्रा से लौटकर एक योगी महाराज ने बयान दिया कि एक बर्फ़ीली गुफा में इक्कीस दिन की तपस्या के बाद उन्हें ज्ञान हुआ था कि एक किसान स्त्री पाँच बच्चे इकट्ठे जनेगी और उनमें से एक भगवान विष्णु का अवतार होगा और उसकी पहचान यह होगी कि उसके बाएँ पैर पर एक गोल निशान होगा। इस पर बहुत से योगी प्रजापुर जा पहुँचे और बच्चों के पैरों की जाँच की। उनमें से एक ने बयान किया कि हर बच्चे के पैर पर गोल निशान है, एक ने कहा कि किसी के पैर पर भी नहीं है, और बाकी की राय थी कि सिर्फ़ एक के पैर पर है। मगर उनमें से किसी को एक बच्चे के पैर पर यह निशान नज़र आता और किसी को दूसरे के।

तिब्बत से एक ख़बर आई कि वहाँ एक औरत ने पाँच बच्चों को जन्म दिया है, मगर बाद में वह झूठी साबित हुई। फिर रूस से एक

को न सिर्फ छः सौ रुपए का लाभ हुआ, बल्कि जब इन खिलौनों की तस्वीरें पत्रों में छपीं, तो हज़ारों रुपए का इश्तहार भी मुफ्त हुआ और इस खिलौनों के कारखाने की बिक्री पहले से तिगुनी हो गई। दो हज़ार के कपड़े बच्चों के लिए सिलवाए गए, जिनमे से कुछ रुपया करोड़ीमल क्लॉथ मिल को मिला और कुछ टीकाचन्द टेलरिंग हाउस को मिला। इस तरह पूरा चालीस हज़ार का हिसाब बराबर करके डेपुटेशन हवाई जहाज़ से भीमपुर पहुँचा, और वहां से मोटरों में चढ़कर प्रजापुर।

साथ में कई दर्जन रिपोर्टर और प्रेस फोटोग्राफर भी थे। जब उनकी मोटरें रामू के झोंपड़े के पास पहुँचीं तो आवाज़ सुनकर रामू झोंपड़े से बाहर निकल आया। इस भीड़ को देखकर वह लड़खड़ाती हुई आवाज़ में बोला—"क्यों, क्या है?"

लेडी नीलकंठ सुपारीवाला ने फ़ौरन एड्रेस पढ़ना शुरू कर दिया—"इस शुभ अवसर पर हम भारत के पैंतीस करोड़ की ओर से श्री रामू और लाजो को बधाई देते हैं। बेशक उन्होंने इस देश की शान में चार चाँद लगा दिए हैं। आज हम श्रीमती लाजो के रूप में भारत-माता का रूप देख रहे हैं। ये पाँच बच्चे रामू और लाजो ही के आँखों के तारे नहीं, सारे देश के राजदुलारे हैं। ये हमारा अनमोल ख़ज़ाना हैं, जिसको देखकर सारी दुनिया की आँखें चकाचौंध हुई जा रही हैं। आज से इन बच्चों की देखभाल, इनकी शिक्षा, शादी-ब्याह, देश की ज़िम्मेदारी है। हम श्री रामू और श्रीमती लाजो से प्रार्थना करते हैं कि ये खिलौने और कपड़े, जो उनके देश वालों ने इन बच्चों के लिए भेजे हैं, स्वीकार करें।"

रामू, जो अब तक अधखुली आँखों से इन सब को खड़ा देख रहा था, अब एक भयानक कहकहा मारकर चिल्ला पड़ा—"खिलौने? कपड़े? जाओ—पहनाओ उन्हें यह कपड़े—" लेडी नीलकंठ सुपारीवाला के हाथ से रेशमी फ्रॉक छीनकर उसने आवाज़ दी—"लाजो—अरी-ओ लाजो! रोती क्यों है? देख, तेरे बच्चों के लिए यह क्या [illegible]

भारत-माता के पाँच रूप

भगवान् ने अपने हाथों से मिट्टी का एक पुतला बनाकर उसमें जान डाली या क्रम-विकास के चक्कर से बन्दर तरक्की करते करते इन्सान बन गया—यह बहस बरसों से चली आ रही है और आज तक इसका फैसला नहीं हो सका। मगर इससे कोई भी इन्कार नहीं कर सकता कि इन्सान को जन्म देने वाली उसकी माँ ही होती है। नौ महीने तक होने वाले बच्चे को वह अपने खून से सींचती है, खुद मौत से गुज़र कर जिन्दगी पैदा करती है। माँ और बच्चे का नाज़ुक रिश्ता अटल और अमर है।

जभी तो इन्सान को जिस चीज से भी बहुत लगाव होता है, उसको माँ के रिश्ते से याद करता है। अपने वतन को "मातृभूमि," "मादरेवतन" या "मदरलैण्ड" कहता है। अपनी यूनिवर्सिटी या कॉलेज को "अलमा-मेटर" (Ulma-Mater) "मादरे तालीमी" या "ज्ञान-माँ" कहता है। जमीन, जो एक प्यार करने वाली माँ की तरह इन्सान को खाना-कपड़ा देती है, "धरती माता" कहलाती है।

हम हिन्दुस्तानियों ने तो हजारों बरसों से अपने देश की धरती को "भारत माता" का नाम दे रखा है।

भारत माता की जय!

वन्दे मातरम्!

इन दोनों कौमी नारों में अपने वतन को माँ कहकर पुकारा गया है।

बेटे को पालने और परवान चढ़ाने के लिए दुनिया की हर मुश्किल और मुसीबत का सामना किया—गरीबी, भूख, बनवास।

वह थी पहली "भारत-माता"।

और उसके बाद? क्या अब हमारे अपने युग में ऐसी माताएँ नहीं हैं जो "भारत माता" कहलाने का उतना ही अधिकार रखती हों?

जब कभी मैं "भारत-माता की जय" का नारा सुनता हूँ, मेरे दिमाग में कई सूरतें उजागर होती हैं—कुछ साधारण स्त्रियों की सूरतें। उनमें से कोई भी किसी वजह से भी मशहूर नहीं है। उनकी तस्वीरें तो क्या, उनमें से किसी का नाम भी आज तक पत्रों में नहीं छपा। फिर भी (मेरी राय में) उनमें से हरएक "भारत-माता" कहला सकती है।

खद्दर का कफन

तीस बरस पहले की बात है, जब मैं बिलकुल बच्चा था, हमारे पड़ोस में एक गरीब बूढ़ी जुलाहिन रहती थी। उसका नाम तो हलीमा था, मगर सब उसे "हक्को" "हक्को" कहकर पुकारते थे। उस समय शायद साठ बरस की उम्र होगी उसकी। जवानी ही में विधवा हो गई थी और उम्र भर अपने हाथ से काम करके उसने अपने बच्चों को पाला था। बूढ़ी होकर भी वह सूरज निकलने से पहले उठती थी, गरमी हो या जाड़ा। अभी हम अपने-अपने लिहाफ़ों में दुबके पड़े होते थे कि उसके घर से चक्की पीसने की आवाज़ आनी शुरू हो जाती। दिन-भर वह झाड़ू देती, चरखा कातती, कपड़ा बुनती, खाना पकाती, अपने लड़कों, लड़कियों, पोतों-दोहतों के कपड़े धोती। उसका घर बहुत ही छोटा सा था। हमारे इतने बड़े आँगन वाले घर के सामने वह जूते के डिब्बे सा लगता था। दो कोठरियाँ, एक पतला सा बरामदा और दो-तीन गज का लम्बा-चौड़ा आँगन। मगर वह उसे इतना साफ़-सुथरा और लिपा पुता रखती थी कि सारे मुहल्ले वाले कहते कि हक्को के घर के फर्श पर

दिए—असहयोग और स्वराज्य के बारे में। हक्को भी एक कोने में बैठी उनकी बातें सुनती रही। बाद में जब चन्दा इकट्ठा किया गया, तो हक्को ने अपने सारे गहने उतारकर उनकी झोली में डाल दिए और उसकी देखादेखी और औरतों ने भी अपने-अपने गहने उतार कर उसी में दिए।

उस दिन से हक्को "ख़िलाफ़ती" हो गई। हमारे यहाँ आकर नाना अब्बा से ख़बरें सुना करती और अकसर पूछती—"यह अंग्रेज़ का राज कब ख़त्म होगा?" ख़िलाफ़त कमेटी या कांग्रेस के जलसे होते तो उनमें बड़े चाव से जाती और अपनी समझ बूझ के अनुसार राजनैतिक आन्दोलनों को समझने की कोशिश करती। मगर उम्र-भर की मेहनत से उसका शरीर खोखला हो चुका था, पहले आँखों ने जवाब दिया और फिर हाथ-पाँव ने हक्को का घर से निकलना बन्द किया, फिर भी चर्खा न छोड़ा। हाथों से टटोलकर आँखों बिना ही वह कपड़ा भी बुन लेती। बेटों-पोतों ने काम करने को मना किया तो उसने कहा, वह यह खद्दर अपने कफ़न के लिए बुन रही है। फिर हक्को मर गई। उसकी आखिरी वसीयत यह थी कि "मुझे मेरे बुने हुए खद्दर का कफ़न देना। अगर अंग्रेज़ी लट्ठे का दिया तो मेरी आत्मा को कभी चैन न मिलेगा।" उन दिनों कफ़न हमेशा लट्ठे ही के होते थे। खद्दर का पहला कफ़न हक्को ही को मिला।

हक्को का जनाज़ा उठा तो उसके कुछ रिश्तेदार और दो-तीन पड़ोसी थे, बस। न जुलूस, न फूल, न झंडे—बस एक खद्दर का कफ़न!

काश, उस समय मुझे इतनी समझ होती कि मैं कम-से-कम एक नारा ही लगा देता—"भारत माता की जय!"

मनु महाराज की हार

मनु महाराज ने इन्सानियत को चार भागों में बाँटा। ब्राह्मण, जो ब्रह्मा के मुख से पैदा हुए, क्षत्रिय, जो ब्रह्मा की भुजाओं से पैदा हुए,

आखिरी भेद भी पा चुकी हो और अब उसके दिल में मौत का डर भी न रहा हो। न जाने कितने वर्षों से वह अपना विधवा जीवन अपने पोते-पोतियों की सेवा करके बिताती रही है। अब उसके हाथ-पांव में बहुत काम करने की ताक़त नहीं रही, फिर भी इस बुढ़ापे में वह घर में सबसे पहले उठती है, ठण्डे पानी से स्नान करती है और फिर पूजा-पाठ में लग जाती है।

दादी सिवाय मरहठी के कोई दूसरी भाषा नहीं जानती। उसके बचपन में लड़कियों को पढ़ना-लिखना नहीं सिखाया जाता था। उसने न कभी अखबार पढ़ा है, न रेडियो सुना है, न कभी किसी जलसे में किसी नेता का भाषण सुना है। उसने कभी "इन्कलाब ज़िन्दाबाद" का नारा नहीं लगाया, फिर भी इन्कलाब खुद दादी को ढूँढता ढूँढता पूना की अंधेरी और तंग गलियों में से होता हुआ दादी के घर आन पहुंचा।

हुआ यह कि दादी के पोतों में से एक लड़का सन् १९४२ के आन्दोलन में पूना के नौजवान सोशलिस्टों के साथ मिल गया। फिर क्या था? दादी का छोटा सा घर, जिसमें सदियों से सिवाय भगवान-भजन के और कोई आवाज़ सुनाई न दी थी, अब "अंडर ग्राउन्ड" नौजवान क्रान्तिकारियों की खुसर-पुसर से गूँज उठा। नए नए शब्द दादी के कानों में पड़ने लगे—नए शब्द और नए विचार! आज़ादी, इन्कलाब, आन्दोलन, साम्राज्य, स्वराज्य, सरकार!

दादी का घर एक तंग गली में है, इसलिए आखिरी [illegible] एक बहुत काम का था। कितने ही "अंडर-ग्राउन्ड" क्रान्तिकारी वहां आकर ठहरने लगे—कई ऐसे जिनके कोई नाम न थे, [illegible] नहीं था, सिवाय इसके कि सब इन्कलाबी विद्यार्थी [illegible]। रात [illegible] अंधेरे में आते और सवेरे सूरज निकलने से पहले चल जाते। [illegible] पुलिस से बचने के लिए ऊपर के कमरे में [illegible] दिन [illegible]। दादी उनकी सेवा भी उसी तरह करती जैसे अपने पोते-[illegible]।

[illegible] लिए चाय बनाती, खाना पकाती, सोने के लिए बिस्तर देती [illegible] पूजा के बाद उनकी रक्षा के लिए भगवान से प्रार्थना [illegible]—क्योंकि दादी के अनपढ़ दिमाग में भी यह बात बैठ गई थी कि ये नौजवान अपनी जान को हथेली पर रखकर देश को आजाद [illegible] के लिए लड़ रहे हैं।

[illegible] अनपढ़ है मगर मूर्ख नहीं। वह बोलती कम है, मगर सुनती [illegible] बहुत है। जल्द ही उसे मालूम हो गया कि [illegible] साथियों में सब ब्राह्मण ही नहीं हैं, नीच जातियों वाले [illegible] हैं। शूद्र भी हैं। ईसाई और मुसलमान भी हैं। मगर न जाने [illegible] कोई सवाल न करती। खाना देते वक्त यह पूछना [illegible] न समझा कि प्याला किसी ब्राह्मण के होंठों से लगेगा, या [illegible] या मुसलमान के। न जाने दादी को क्या हो गया था कि [illegible] जात-पात के कायदे-कानून को यूँ निडरता से तोड़ने को [illegible]

बातें करते थे? तुम्हारा पोता कहाँ है? उसके साथी कौन हैं? मगर दादी ने हर सवाल का जवाब बड़े भोलेपन से यही दिया—"मुझे नहीं मालूम। मैं अनपढ़ बुढ़िया ये बातें क्या जानूँ?" तंग आकर पुलिस ने दादी को छोड़ दिया। मगर दादी की ज़बान से एक शब्द भी न निकला जिससे क्रान्तिकारियों का पता चल सके।

दादी अब भी पूजा-पाठ करती है, मगर अब वह छूतछात नहीं बरतती। पिछले बरस जब उसके उसी सोशलिस्ट पोते का ब्याह हुआ और इस ब्याह में शामिल होने के लिए उसके कई मुसलमान दोस्त भी आए, उसके घर में ठहरे—और शादी की रस्मों में शरीक हुए, तो कई कट्टर विचारों के रिश्तेदारों ने इस ब्याह में आने से साफ इन्कार कर दिया। दादी से भी कहा गया कि वह अपनी बुज़ुर्गी के ज़ोर से पोते को मजबूर करे कि म्लेच्छों को अपने ब्याह की रस्मों में न बिठाए। मगर दादी ने उनकी एक न मानी। और ब्याह के अगले दिन सवेरे मैंने देखा कि दादी बैठी मेरी बीवी को चाय पिला रही है और अपनी पोती के ज़रिए बातें कर रही है—वैसी ही बातें और बिलकुल उसी तरह जैसी मेरी दादी किया करती थी।

और उस दिन से मैं अक्सर सोचता हूँ कि जब हिन्दुस्तान के स्वतन्त्रता-संग्राम का इतिहास लिखा जायगा, तो क्या उसमें इस बेनाम दादी का नाम भी होगा? जिसने आज़ादी और इन्साफ के लिए अपने सदियों पुराने विचारों और उसूलों को त्याग दिया? और फिर मैं सोचता हूँ कि इस दुबली, सूखी, पोपली, बूढ़ी स्त्री में वह कौन सी शक्ति है कि मनु महाराज का मुकाबिला करने से भी नहीं डरती? क्या इसलिए कि वह 'भारत माता' है और 'भारत-माता' मनुस्मृति से कहीं ज़्यादा अटल-अमर है?

'हिन्दोस्ताँ हमारा'

हम उत्तर में रहने वाले [illegible]

समाज-सुधार का काम करना शुरू किया था। तब से यह परिवार सब राष्ट्रीय आन्दोलनों में आगे आगे रहा है। मगर इस उदारता और प्रगतिशीलता की नींव सिर्फ़ राष्ट्रीय चेतना पर क़ायम न थी। ये लोग पिछले तीस बरस में दिल्ली, कलकत्ते, जमशेदपुर, इलाहाबाद, अलमोड़ा, वर्धा, बम्बई और न जाने कहाँ-कहाँ रहे थे। उनकी अपनी भाषा तामिल है, मगर मेरे दोस्त की माँ बचपन में मालाबार में रही थीं इसलिए मलयालम भी बोल लेती हैं। यू० पी० में बरसों रहने के कारण सब घर वाले साफ हिन्दुस्तानी बोलते हैं और बंगाली तो बंगालियों ही की तरह बोलते हैं। एक बेटी का ब्याह एक बंगाली शिक्षा डायरेक्टर से हुआ है। दूसरी का ब्याह एक बंगाली पत्रकार से। बेटियों के बच्चे, जो बम्बई में रहते हैं, तामिल, बंगाली, हिन्दुस्तानी, गुजराती, मराठी और अँग्रेज़ी छः भाषाओं की खिचड़ी बोलते हैं। और घर में खाना तो पँचमेल पकता ही है। यह घराना सचमुच दावा कर सकता है कि "हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दोस्ताँ हमारा!"

इस घराने की सबसे दिलचस्प व महत्वपूर्ण सदस्या इनकी माँ हैं। यह देवी, जो किसी ज़माने में बहुत सुन्दर रही होंगी, अब से चालीस बरस पहले कालिज में पढ़ चुकी हैं। अँग्रेज़ी बोलती ही नहीं, लिख पढ़ भी सकती हैं, तामिल में लेख और कविताएँ लिखती हैं। अपने सब बेटों और बेटियों को उन्होंने ऊँची शिक्षा दिलवाई है। कभी उनके पति को अट्ठारह सौ रुपए मासिक वेतन मिलता था। वह शानदार बँगले में रहती थीं और फर्स्ट क्लास में यात्रा किया करती थीं। अब वे सिर्फ एक कमरे में अपने सारे ख़ानदान समेत रहती हैं, [illegible] सादा [illegible] और टूटे चप्पल पहनती हैं, खाना अपने हाथ से पकाती हैं और सब [illegible] और उनके मेहमानों को खिला लेती हैं, तब [illegible] खुद [illegible] खाती हैं। मगर उन्होंने गृहस्थी में पड़कर अपने दिमाग को [illegible] बन्द नहीं कर लिया। अँग्रेज़ी, तामिल और हिन्दी की किताबें और पत्र बराबर पढ़ती हैं, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय [illegible]

पंखा भी झल सकती है, रोटियाँ भी पका सकती हैं और राजनैतिक विचारों पर बहस भी कर सकती है।

और फिर मैंने सोचा कि यह तो "भारत-माता" का नया और बड़ा अनोखा रूप है—जिसके एक हाथ में किताब है और दूसरे में पंखा, जिसके बालों में गुलाब के फूल हैं और पैरों में काम काज की धूल, जिसकी आँखों में बंगाल का जादू है और होठों पर मालाबार की मुस्कान, जिसके शरीर में राजस्थान का लोच है और रंगत में पंजाब की सुर्खी, जिसके चेहरे पर बुढ़ापे की गम्भीरता है और जिसके दिल में जवानी की हिम्मत और ज़िन्दगी और शरारत है।

शरणार्थी

अगस्त-सितम्बर, सन् ४७, के तूफ़ान ने एक करोड़ के लगभग इन्सानों को सूखे पत्तों की तरह उड़ाकर कहीं से कहीं जा गिराया। पेशावर वाले बम्बई, दिल्ली वाले कराची, कराची वाले बम्बई, लाहौर वाले दिल्ली, रावलपिंडी वाले आगरे, आगरे वाले लायलपुर और लायलपुर वाले पानीपत पहुँच गए। उम्र भर के साथी और [illegible] और पड़ोसी अलग हो गए। पुराने घराने तितर-बितर हो गए। भाई से भाई बिछड़ गया। घरवाले बेघर हो गए, लखपति कंगाल हो गए। चार दीवारी में पली हुई जवानियाँ बिकने के लिए बाज़ारों में [illegible]।

इस तूफ़ान ने अक्तूबर, सन् ४७, में दो बूढ़ी औरतों को उनके अपने-अपने पुराने वतन से उठाकर हज़ारों मील दूर बम्बई में ला फेंका। इनमें से एक मेरी अम्माँ थीं और दूसरी मेरे एक मित्र साहब की माँ। एक पूर्वी पंजाब से आईं, दूसरी पश्चिमी पंजाब से। दोनों आकर एक ही दिन बम्बई पहुँचीं। मेरी अम्माँ पानीपत से [illegible] मिलिटरी ट्रक में दिल्ली आईं, और वहाँ से हवाई जहाज़ से बम्बई आईं, क्योंकि उन दिनों रेल का सफ़र ख़तरनाक था। मेरे दोस्त की माँ कई मुसीबतें झेलने के बाद, पश्चिमी पंजाब के [illegible]

था ही। थोड़ी-बहुत आमदनी दूकानों से हो जाती, कुछ रुपया बेटा भेज देता। जून में जब देश के बटवारे और पाकिस्तान बनने की खबरें आईं, तब भी माँजी ज़रा न घबराईं। उन्हें राजनैतिक झगड़ों से क्या काम, हिन्दुस्तान हो या पाकिस्तान, उनका वास्ता तो अपने पड़ोसियों से था। सो उनसे हमेशा के अच्छे सम्बन्ध चले आ रहे थे। लाख साम्प्रदायिक झगड़े हुए, मगर माँजी और उनके घरवालों पर कोई आँच न आई। मगर इस बार तो बहुत ही भयानक आग भड़की थी। रावलपिंडी में हिन्दुओं और सिक्खों की जान खतरे में थी। मगर माँजी फिर भी शांत रहीं। बेटे ने लिखा, फौरन बम्बई चली आओ, मगर वह रावलपिंडी छोड़ने पर राज़ी न हुईं। उनके बहुत से रिश्तेदार और जाननेवाले पूर्वी पंजाब या दिल्ली चले गए, मगर माँजी अपने घर से न हिलीं। जब भी कोई उनसे कहता कि यहाँ खतरा है, हिन्दुस्तान चली जाओ, वह यही जवाब देतीं कि हमें कौन मारेगा? इस मुहल्ले में चारों तरफ अपने ही बच्चे तो रहते हैं!

और फिर पूर्वी पंजाब से आए हुए मुसलमान शरणार्थियों के आने के बाद रावलपिंडी की हालत इतनी बिगड़ गई कि उनके मुसलमान पड़ोसियों में से भी दो-चार ने सलाह दी कि आप किसी सुरक्षित जगह पर चली जाएँ, नहीं तो हमें आपकी जान का खतरा है। मगर कई ऐसे भी थे, जो उनसे यही कहते रहे कि आप न घबराएँ, हम आपकी रक्षा अपनी जान देकर भी करेंगे। एक मुसलमान दरज़ी, जो उनका किराएदार था और जिसका आना-जाना सरदारनी के यहाँ था, वह तो बहुत ही रोया गिड़गिड़ाया कि आप छोड़ न जाएँ।

पूर्वी पंजाब से, जो मुसीबत के मारे आए थे, उनमें से बहुत से माँजी के घर के पास ही ठहरे हुए थे। उनकी दुखी हालत [illegible] से न देखा गया और वह उन्हें खाना, कपड़े, ज़मीन पर बिछाने [illegible] दरियाँ, [illegible] ओढ़ने के लिए रज़ाइयाँ [illegible]। और उनके मन में कभी भी यह विचार न गुज़रा कि ये मुसलमान हैं, [illegible]

था ही। थोडी-बहुत आमदनी दूकानों से हो जाती, कुछ रुपया बेटा भेज देता। जून मे जब देश के बटवारे और पाकिस्तान बनने की खबरें छपीं, तब भी माँजी ज़रा न घबराईं। उन्हे राजनैतिक झगडों मे क्या काम? हिन्दुस्तान हो या पाकिस्तान, उनका वास्ता तो अपने पडोसियों मे था। सो उनसे हमेशा के अच्छे सम्बन्ध चले आ रहे थे। लाख साम्प्रदायिक झगड़े हुए, मगर माँजी और उनके घरवालों पर कोई आँच न आई। मगर इस बार तो बहुत ही भयानक आग भड़की थी। रावलपिंडी में हिन्दुओं और सिक्खों की जान खतरे में थी। मगर माँजी फिर भी शात रहीं। बेटे ने लिखा, फौरन बम्बई चली आओ, मगर वह रावलपिंडी छोड़ने पर राज़ी न हुईं। उनके बहुत से रिश्तेदार और जाननेवाले पूर्वी पजाब या दिल्ली चले गए, मगर माँजी अपने घर से न हिलीं। जब भी कोई उनसे कहता कि यहाँ खतरा है, हिन्दुस्तान चली जाओ, वह यही जवाब देतीं कि हमें कौन मारेगा? इस मुहल्ले में चारों तरफ अपने ही बच्चे तो रहते हैं!

और फिर पूर्वी पजाब से आए हुए मुसलमान शरणार्थियों के आने के बाद रावलपिंडी की हालत इतनी बिगड गई कि उनके मुसलमान पडोसियों में से भी दो-चार ने सलाह दी कि आप किसी सुरक्षित जगह पर चली जायँ, नहीं तो हमें आपकी जान का ख़तरा है। मगर कई ऐसे भी थे, जो उनसे यही कहते रहे कि आप न घबरायँ, हम आपकी रक्षा अपनी जान देकर भी करेंगे। एक मुसलमान दरज़ी, जो उनका किराएदार था और जिसका आना-जाना सरदारजी के यहाँ था, वह तो बहुत ही रोया-गिड़गिड़ाया कि आप लोग न जायँ।

पूर्वी पंजाब से, जो मुसीबत के मारे आए थे, उनमें से बहुत से माँजी के घर के पास ही ठहरे हुए थे। उनकी बुरी हालत देखकर माँजी से न रहा गया और वह उन्हें खाना, कपडे, ज़मीन पर बिछाने के लिए दरियाँ, रात को ओढ़ने के लिए रज़ाइयाँ इत्यादि भिजवाती रहीं। और उनके मन में कभी भी यह विचार न गुज़रा कि ये मुसलमान हैं, सिक्खों

था ही। थोड़ी-बहुत आमदनी दूकानों से हो जाती, कुछ रुपया बेटा भेज देता। जून में जब देश के बटवारे और पाकिस्तान बनने की खबरें छपीं, तब भी माँजी ज़रा न घबराईं। उन्हें राजनैतिक झगड़ों से क्या काम? हिन्दुस्तान हो या पाकिस्तान, उनका वास्ता तो अपने पड़ोसियों से था। सो उनसे हमेशा के अच्छे सम्बन्ध चले आ रहे थे। लाख साम्प्रदायिक झगड़े हुए, मगर माँजी और उनके घरवालों पर कोई आँच न आई। मगर इस बार तो बहुत ही भयानक आग भड़की थी। रावलपिंडी में हिन्दुओं और सिक्खों की जान खतरे में थी। मगर माँजी फिर भी शांत रहीं। बेटे ने लिखा, फ़ौरन बम्बई चली आओ, मगर वह रावलपिंडी छोड़ने पर राज़ी न हुईं। उनके बहुत से रिश्तेदार और जाननेवाले पूर्वी पंजाब या दिल्ली चले गए, मगर माँजी अपने घर से न हिलीं। जब भी कोई उनसे कहता कि यहाँ खतरा है, हिन्दुस्तान चली जाओ, वह यही जवाब देतीं कि हमें कौन मारेगा? इस मुहल्ले में चारों तरफ़ अपने ही बच्चे तो रहते हैं!

और फिर पूर्वी पंजाब से आए हुए मुसलमान शरणार्थियों के आने के बाद रावलपिंडी की हालत इतनी बिगड़ गई कि उनके मुसलमान पड़ोसियों में से भी दो-चार ने सलाह दी कि आप किसी सुरक्षित जगह पर चली जायँ, नहीं तो हमें आपकी जान का ख़तरा है। मगर कई ऐसे भी थे, जो उनसे यही कहते रहे कि आप न घबरायँ, हम आपकी रक्षा अपनी जान देकर भी करेंगे। एक मुसलमान दरज़ी, जो उनका किराए-दार था और जिसका आना-जाना सरदारजी के यहाँ था, वह तो बहुत ही रोया गिड़गिड़ाया कि आप लोग न जायँ।

पूर्वी पंजाब से, जो मुसीबत के मारे आए थे, उनमें से बहुत से माँजी के घर के पास ही ठहरे हुए थे। उनकी बुरी हालत देखकर माँजी से न रहा गया और वह उन्हें खाना, कपड़े, ज़मीन पर बिछाने के लिए दरियाँ, रात को ओढ़ने के लिए रज़ाइयाँ इत्यादि भिजवाती रहीं। और उनके मन में कभी भी यह विचार न गुज़रा कि ये मुसलमान हैं, सिक्खों

[illegible] दुश्मन कहलाते हैं, इनकी मदद न करनी चाहिए—और न यह ख्याल आया कि शायद दो-चार दिन बाद वह खुद भी इसी हालत [illegible] जातीं।

इन्हीं दिनों में उनके मकान के सामने सड़क पर कुछ मुसलमान [illegible] ने एक हिन्दू ताँगे वाले को छुरा भोंककर मार डाला। मैंने यह [illegible] माँजी की ज़बान से सुनी है—"बेटा, ताँगे वाला तो फिर भी हिन्दू था, पर घोड़े का न तो कोई धर्म होता है, न जात-पात। पर उन्होंने उस बेचारे जानवर को भी न छोड़ा। छुरे भोंक-भोंककर उसे भी मार डाला। ऐसा लगता था जैसे उनके सिरों पर खून सवार हो, जैसे [illegible] इन्सान न रहे हों, कुछ और हो गए हों।" उसके बाद माँजी को फ़ैसला करना पड़ा कि अब उनका और उनके घर वालों का वहाँ रहना खतरे से खाली नहीं।

[illegible] रावलपिंडी का मकान और उसमें अपना सारा सामान छोड़कर चली आईं। सिर्फ़ ताला लगाकर। यह सोचती हुई कि हमेशा के लिए थोड़े ही जा रही हूँ, यह पागलपन कभी तो कम होगा, तब वापस आ जायेंगे। मगर दिल्ली पहुँचते-पहुँचते उनकी बूढ़ी आँखों ने [illegible] देखा कि रावलपिंडी वापस जाने का विचार करना असम्भव हो गया। जब तक वह बम्बई पहुँचीं, रावलपिंडी की याद उनके दिल में [illegible] बनकर रह गई।

रावलपिंडी में वह छः बड़े बड़े कमरों के घर में रहती थीं, बम्बई में [illegible] और उनके पति अपने बेटे के पास रहते हैं—तीनों एक छोटी-सी [illegible] कमरे में जिसके एक ओर धोबी रहता है, दूसरी ओर कोयले की दुकान है। पीछे एक छोटी-सी कोठरी है, जो एक साथ रसोई, [illegible] और स्टोर रूम का काम देती है। जब मेरा दोस्त यहाँ [illegible] रहता था, यहाँ कमरा एक "कबाड़खाना" लगता था जहाँ पुराने [illegible], [illegible] बर्तनों और मैले कपड़ों के ढेर हर जगह लगे रहते [illegible] अब आप यहाँ जाइए तो इतनी तंग जगह में भी हर चीज़ साफ़-

सुथरी और ठिकाने से लगी हुई मिलेगी। फर्श साफ चमकता हुआ—क्या मजाल कि कहीं मिट्टी या धूल का एक भी ज़र्रा नज़र आ जाय। अपने बेटे और पति के लिए माँजी अपने हाथ से खाना पकाती है, और कोई मिलने-जुलने वाला आ जाय तो वह कुछ खाए-पीए बिना वहाँ से नहीं जा सकता। माँजी का घर छूट गया है, सामान छूट गया है, ज़मीन और घर की मालकिन से वह शरणार्थी हो गई हैं, मगर उनकी मेहमानदारी नहीं गई।

माँजी का रंग गोरा है, क़द छोटा सा, बाल पहले खिचड़ी थे, अब रावलपिंडी से आने के बाद सफ़ेद हो गए हैं। बीमार भी रहती हैं, मगर कभी बेकार नहीं बैठतीं। कोई-न-कोई काम-काज करती ही रहती हैं। बेटे के लिए खाना पकाना हो, या पति के कपड़ों में पैबंद लगाना हो, या किसी मेहमान के लिए चाय या लस्सी बनानी हो—हर काम अपने हाथ से करती हैं। उनको देखकर आप कभी नहीं कह सकते कि वह इतनी मुसीबतें झेली हुई शरणार्थी है। वह कभी मुसलमानों को बुरा नहीं कहतीं, जिनके कारण उन्हें बेघर होना पड़ा, और अपने मुसलमान पड़ोसियों का ज़िक्र अब भी बड़ी मुहब्बत से करती हैं। उन्हें ख़त लिखवाती रहती हैं और उनका जवाब आने पर बहुत खुश होती हैं। जब वह मेरी अम्माँ से पहली बार मिलीं, तो दोनों एक-दूसरे के गले लग गईं और कुछ कहने-सुनने से पहले कई मिनट तक दोनों अपने-अपने वतन की याद करते हुए चुपचाप रोती रहीं और फिर एक-दूसरे को इस तरह तसल्ली देती रहीं जैसे कि दोनों सगी बहनें हों। और एक सिक्ख और एक मुसलमान औरत को यूं रोते देखकर मुझे ऐसा लगा कि मुसलमानों और सिखों की तीन साल की नफ़रत इन दोनों के आँसुओं से धुल गई है।

माँजी शरणार्थी हैं, मगर वह अपने दुःख और नुकसान का ऐलान नहीं करतीं। हाँ, कभी-कभी एक हल्की-सी ठंडी साँस लेती हैं और कहती हैं—"बेटा! तुम्हारा बम्बई लाख बड़ा शहर हो, मगर हम तो

चलें और मुझे भी लिखें कि मैं बम्बई से कराची आ जाऊँ। मगर उन्होंने साफ़ इन्कार कर दिया और कहा—"हम अपना वतन क्यों छोड़ें? मेरे बेटे ने हिन्दुस्तान ही में रहने का फ़ैसला किया है और इस फ़ैसले में मैं उसके साथ हूँ।" झगड़े शुरू होने बाद बीस बाईस दिन उन्होंने पानीपत ही में गुज़ारे। सात-सात दिन का कर्फ़्यू रहा, घर में सूखी रोटी और चटनी खाकर गुज़ारा करना पड़ा। कई-कई दिन बच्चों को दूध न मिला, और पान, जो उनके जीवन का अनिवार्य अंग थे, बाज़ार से गायब हो गए। एक रुपए में एक पत्ता मिलता जिसके दस छोटे-छोटे टुकड़े करके वह दिन-भर चलातीं।

ख़ानदान का कोई मर्द उस वक्त पानीपत में नहीं था। मैं बम्बई में था और मेरे एक चचेरे भाई पूना में, और एक दिल्ली में। मगर उन दिनों दिल्ली से पानीपत तक पचास मील का सफ़र करना भी मुश्किल था। ख़त और तार भी आ-जा न सकता था। फिर भी अम्माँ अपने हिन्दुस्तान में रहने के फ़ैसले पर अटल रहीं।

फिर हमारे उन रिश्तेदारों को निकालने के लिए, जिन्होंने पाकिस्तान न जाने का फ़ैसला कर लिया था, दिल्ली से एक मिलिटरी ट्रक पंडित जवाहरलाल नेहरू की मेहरबानी से रातोंरात पानीपत भेजा गया। घंटे-भर की मोहलत सामान बाँधने के लिए मिली। बुर्कों में लिपटी हुई औरतें जो-कुछ ख़ुद उठा सकती थीं, वह साथ लेकर चल पड़ीं। मगर चलते वक्त मेरी अम्माँ को दूर-दूर भी यह ख़याल नहीं था कि वह अपने वतन और अपने घर को हमेशा के लिए छोड़ रही हैं, बल्कि पक्का विश्वास था कि हालात सुधरते ही वह फिर पानीपत वापस आ जायँगी। इसलिए उन्होंने दरवाज़े पर एक ताला डालकर उस पर एक बोर्ड लगवा दिया—"इस घर वाले पाकिस्तान नहीं जा रहे हैं, अपने रिश्तेदारों के पास बम्बई जा रहे हैं और हिन्दुस्तान ही में रहेंगे।"

बीस दिन वे सब दिल्ली में रहे। तीस आदमी, एक कमरे में बन्द। हवाई जहाज़ के अड्डे तक पहुँचना भी मुश्किल था और रेल

समस्या पर मुझसे कितनी बार कड़ी बहस की थी, आज अपनी जान बचाने के लिए बुर्का छोड़ने पर मजबूर हुई थीं। मैंने उम्र-भर कोशिश की थी कि वह पर्दा छोड़ दें, मगर उस वक्त उन्हें बिना बुर्के के आते देखकर मुझे बिलकुल खुशी न हुई बल्कि मैं डरा कि शायद इस मजबूरी के कारण उनकी तबियत में कड़वाहट आ गई हो और वह उस ज़िन्दगी पर लानत भेजने लगी हों जिसने उन्हें अपने गलत मगर प्यारे असूल को तोडने पर मज़बूर किया था।

यही सोचता हुआ मैं उन्हें सहारा देकर मोटर तक ले गया। कुछ मिनट तक सास की तकलीफ़ के कारण वह न बोल सकीं, फिर सास को संभालते हुए उन्होंने कहा, ये शब्द मैं आज तक भी नहीं भूला—"भई मैं तो अब हमेशा हवाई-जहाज़ मे सफ़र किया करूँगी, बड़े आराम की सवारी है।" ज़िन्दगी में उन्हें कितना अटल विश्वास था।

और उस रात को पानीपत और दिल्ली की बातें सुनाते हुए उन्होंने मेरे दूसरे सन्देहों को भी दूर कर दिया। कहने लगीं—"न ये अच्छे, न वे अच्छे! न मुसलमानों ने कसर उठा राखी, न हिन्दुओं और सिक्खों ने। सब के सिर पर खून सवार है! मगर मुसलमान होने की हैसियत से मैं तो मुसलमानों ही को ज्यादा इलज़ाम दूँगी कि उन्होंने अपनी हरकतों से इस्लाम का नाम डुबो दिया।"

उन दिनों बम्बई में दंगा-फ़साद ज़ोर-से चल रहा था। मेरी अम्मा को मालूम था कि शिवाजी पार्क, जहा हम रहते हैं, वह हिन्दू इलाक़ा है जहां उस वक्त शायद सिर्फ़ दो-तीन मुसलमानों के घर थे। फिर भी अगले दिन ही वह बुर्क़ा ओढ़ दो बच्चों की अंगुली पकड़ समुद्र की सैर करने और बच्चों के लिए सीपियां इकट्ठी करने चल दीं। मैंने दबी ज़बान से रोकने की कोशिश भी की, मगर वह न मानीं। कहने लगीं, "अरे, मुझे कौन मारेगा?" वह बिना खटके आहिस्ता-आहिस्ता समुद्र के किनारे टहलती रहीं और मै काफी परेशान अहाते की दीवार पर बैठा दूर से उनकी रक्षा करता रहा। मैं बुज़दिल निकला और वह बहा-

वह मां की खातिर वहाँ चला आयगा। और इसलिए वह मरते मर गई मगर कभी एक बार भी मुझे आने के लिए न लिखवाया, बल्कि बेटी से कहती रहीं कि कोई ऐसी परेशानी की चिट्ठी न लिखना कि वह घबरा कर चला आए। वह हिन्दुस्तान में मरना चाहती थीं। जब ज़रा तबियत सँभली तो मुझे लिखवाया कि "परमिट" का इन्तज़ाम करा दो, मैं वापस आना चाहती हूँ। मरने से कुछ दिन पहले इंडियन हाई-कमिश्नर के दफ्तर ने "भारतीय नागरिक" मानते हुए उन्हें हमेशा के लिए हिन्दुस्तान में रहने की आज्ञा दे दी—मगर अपने वतन लौटने के सपने देखते हुए ही इस दुनिया से कूच कर गईं।

उनकी कब्र कराची के कब्रिस्तान में है, मगर उनकी आत्मा, उनकी याद, उनका जीवन-आदर्श यहीं हिन्दुस्तान में हमारे पास हैं। पानीपत में उनकी सब जायदाद लुट गई, मगर उनसे जो हमें विरसे में मिला है, वह मकानों, ज़मीनों, ज़ेवर-गहनों से कहीं ज़्यादा कीमती है।

और पाकिस्तान की छः फुट ज़मीन हमेशा-हमेशा के लिए भारत-भूमि ही रहेगी, क्योंकि उसमें एक "भारत-माता" दफ़न है।

•

किनारे एक अधनंगा बच्चा बैठा पाखाना कर रहा था। नुक्कड़ वाली पनवाड़न की दूकान के सामने कुछ देहाती खड़े बीड़ी पी रहे थे और पनवाड़न से हंसी-मजाक कर रहे थे। बच्चे, जो एक दूसरे के पीछे लगे हुए रेल का खेल खेल रहे थे, एक तरफ से आए और छुकछुक करते, सीटी बजाते हुए दूसरी तरफ से गुजर गए। सामने वाली 'चाल' के पीछे ही एक एल्यूमिनियम के बरतनों का कारखाना था, जिसकी ठकठक, खटखट, धड़धड़ दिन-रात चलती रहती थी। 'चाल' की छत से मिली हुई कारखाने की चिमनी थी जो धुआँ उगलती रहती थी और जब हवा इधर की होती, धुआँ इन सब 'चालों' की खिड़कियों में से अन्दर आ जाता और प्रत्येक चीज़ पर—दीवारों पर, कपड़ों पर, बिस्तरों पर—काला पाउडर मल देता। इसलिए जहां तक होता, गोपाल अपने कमरे की खिड़कियां बन्द ही रखता था कि कहीं कारखाने का धुआँ उसकी तसवीरों को खराब न कर जाय' 'इसके अतिरिक्त खिड़की के बाहर का दृश्य उसे सदा बहुत बुरा लगता था। जब भी वह खिड़की खोलता, उसे गन्दगी के ढेर और गन्दी नाली देखकर बेहद कष्ट होता था और जितनी जल्दी सम्भव होता, वह खिड़की बन्द करके फिर अपने कला-भवन में बन्द हो जाता, सुन्दर चित्रों में गुम हो जाता और बाहर की यथार्थता और उसकी गन्दगी, बदबू और शोर को भूल जा।

मगर आज गरमी बहुत थी, बन्द कमरे में दम घुट रहा था। इसलिए धुएं की परवाह न करते हुए गोपाल ने खिड़कियों के पट खोल दिए। बाहर से ठंडी हवा के साथ ही बदबू का एक झोंका आया और साथ ही कारख़ाने की चिमनी के धुएं का गुबार। मगर आज उसने खिड़की खुली रखी और देर तक गली में आने-जाने वालों को देखता रहा—एक नई नज़र से, और आज उसे यह गली एक नई गली नज़र आई।

गोपाल एक मज़दूर था। वह सामनेवाले एल्यूमिनियम के कार-

को केवल सुन्दर चीज़ों से सरोकार होना चाहिए और खूबसूरती गोपाल को केवल अपनी कल्पना में मिल सकती थी।

गोपाल चित्र क्यों बनाता था? इसका उत्तर शायद वह आप भी न दे सकता था। उसका कोई चित्र आज तक न बिका था। किसी पत्र में उसके चित्रों का उल्लेख कभी न छपा था। कला की दुनिया में कोई उसका नाम भी न जानता था। फिर वह चित्र क्यों बनाता था?

शायद इसलिए कि उसका पिता त्यौहारों के अवसर पर मिट्टी से देवी-देवताओं की मूर्त्तियां बनाया करता था और बचपन से गोपाल को अपने पिता के रंग चुरा कर कागज़ पर रेखाएँ खींचने का शौक हो गया था। शायद इसलिए कि स्कूल में ड्राइंग की क्लास के सिवाय और किसी काम में उसका जी न लगता था और ड्राइंग-मास्टर ने उसके बनाए हुए चित्रों को देखकर उसकी हिम्मत बढ़ाई थी। शायद इसलिए कि गोपाल ग़रीब था और एक गन्दी गली में एक बदबूदार 'चाल' में रहता था और उसे अपने मन की भड़ास निकालने के लिए एक निकास की आवश्यकता थी। अनाथ और गरीब, गोपाल के दिल में सौन्दर्य, नर्मी और प्रेम की एक अजीब प्यास थी जिसको ये चित्र बनाकर ही वह बुझा सकता था।

गोपाल चित्र क्यों बनाता था? शायद इसलिए कि जब वह सत्रह बरस का था, उसने एक लड़की से प्रेम किया था—एक लड़की से, जो ... पड़ोस में रहती थी, जो सुन्दर थी, जो अमीर बाप की बेटी थी ... गरीब गोपाल की पहुँच से बाहर थी और इसलिए इस प्रेम का ... कभी प्रदर्शन न कर सका था। वह मुहब्बत उसके दिल-ही-दिल में घुटी रही थी, मगर बुझी नहीं थी। राख में दबी हुई चिन्गारी की तरह वह चुपचाप सुलगती रही थी—और बरसों बाद जब वह अपना कस्बा छोड़कर बम्बई आ गया था और वह लड़की डिप्टी कलक्टर के चार बच्चों की मा बन चुकी थी—अब भी मुहब्बत की वह भावना गोपाल के दिल में सुलग रही थी और उसको व्यक्त करने का भी इन तसवीरों

मार का इन्तज़ार कर रहा था, मगर रजनी के गालों में लाली भरने के लिए गुलाबी रंग चाहिए था और आज गोपाल के पास लाल रंग खत्म हो चुका था। बाज़ार से नया रंग खरीदने के लिए पैसे भी जेब में नहीं थे। इतना लाल रंग भी नहीं था कि तसवीर में रजनी के माथे पर बिन्दी ही बना सके ··

फिर उसने सोचा कि मैं रजनी की तसवीर नहीं बल्कि भगवान् कृष्ण के बालरूपन की तसवीर बनाऊँगा, उनके सुन्दर श्याम शरीर में बचपन का भोलापन और नर्मी भर दूँगा, उनके चेहरे पर अमर बचपन की चंचलता और चपलता होगी ··मगर आज उसके पास नीला रंग भी तो नहीं था।

तो फिर फूलों से ढकी हुई एक हरी-भरी पहाड़ी—दूर सूरज डूब रहा हो—सुन्दर पहाड़िनें सिरों पर गागरें उठाए चश्मे से पानी ला रही हों—मगर उसके पास हरा रंग भी नहीं था।

लाल रंग नहीं था। गुलाबी नहीं था। हरा नहीं था। नीला नहीं था। सुनहरा नहीं था। गेरुआ नहीं था—बस एक रंग बाकी रह गया था—काला, स्याह रंग—क्योंकि इस रंग का अब तक उसने अपने चित्रों में कभी उपयोग न किया था।

मगर काले रंग से कोई सुन्दर रूमानी चित्र थोड़े ही बनाया जा सकता है? काला तो उदासी का रंग है, गरीबी और बदसूरती का रंग है। काले रंग से रजनी की तसवीर नहीं बनाई जा सकती, बाल-[illegible]ल की तसवीर नहीं बन सकती, न किसी सुन्दर राजकुमारी का, [illegible]ादे की। न हरी-भरी फूलों से लदी पहाड़ी की, न रंगीले [illegible] की। इस बदसूरत, अशुभ रंग से तो बस इस अँधेरी, गन्दी, बदबूदार गली की तसवीर ही बन सकती है····

इस गली की तसवीर? नहीं-नहीं, यह कैसे हो सकता है? भला ऐसे भयानक दृश्य की तसवीर कौन देखना पसन्द करेगा? मगर ··

इस बार गोपाल ने खिड़की के बाहर झाँककर नीचे गली को देखा

लाल और पीले और नीले और हरे रंग छीन लिए थे

और फिर उसने सोचा, अच्छा, ऐसा है तो यही सही। दो साल से मैं देवी-देवताओं, राजकुमारियों और शाहज़ादियों की रंग-बिरंगी तसवीरें बनाता रहा हूँ, मगर दुनिया ने उन्हें आँख उठाकर भी न देखा। मैं अपनी कला के मन्दिर में रजनी की पूजा करता रहा हूँ, मगर उसने कभी मुझे भूले से भी याद नहीं किया। मैंने उसके चरणों में इन्द्रधनुष के सारे रंग धर दिये, मगर उसने मेरी भेंट को कभी स्वीकार न किया। मैंने अपनी कला के लिए मज़दूरी करके, भूखा रहकर, अपनी नींद और आराम और अपने खून की भेंट दी है, मगर उसका वरदान मुझे क्या मिला? अब मैं इस दुनिया, इस समाज से यह भयानक चित्र बनाकर ही बदला लूँगा ताकि लोग देखें कि कहाँ और किस हाल में और किस वातावरण में गरीब गुमनाम कलाकार अपना जीवन बिता रहे हैं। और उसी क्षण चित्र का नाम भी बिजली की तरह कौंधता हुआ उसके दिमाग में आ गया—'जहाँ मैं रहता हूँ!' अपने रंगों के डिब्बे को उठाकर वह खिड़की तक लाया और उसमें से लाल और नीले और पीले और हरे रंगों के खाली पिचके हुए ट्यूब बाहर गली में फेंक दिए और काले रंग की एक भरी हुई ट्यूब ऐसे उठा ली जैसे यही उसका हथियार हो।

दो दिन और दो रात वह बराबर इस चित्र पर काम करता रहा। खाना-पीना, नहाना-धोना, कपड़े बदलना—सब-कुछ भूल गया के दिमाग में धुन थी तो यही कि इस अँधेरी गन्दी गली की तसवीर उस सारे समाज की तसवीर खींच कर रख दे जो इस अँधेरे और इस गन्दगी को परवान चढ़ाती है—यहाँ तक कि उसके कैनवस पर न सिर्फ गली की आकृति नज़र आने लगी बल्कि उस गली की आत्मा भी उभर आई। इस आत्मा की चेतना गोपाल को पहली बार हुई थी—तसवीर बनाते हुए उसने अपनी गली को एक नए ढंग से देखा था—और उसकी निगाह गली की गन्दगी और अँधेरे को चीरती हुई उस मनु-

खिड़की में बैठा यही सोचता रहा, मगर उसकी समझ में न आया— यहाँ तक कि सवेरा हो गया और सोती हुई गली आँखें मलती हुई जाग उठी। औरतें फिर लाइन बनाकर नल के पास खड़ी हो गईं। पनवाड़ी ने अपनी दूकान खोलकर झाड़ना-पोंछना शुरू कर दिया। कितनी ही रसोइयों से धुआँ निकल कर चिमनी के धुएँ में मिलने लगा— यही सब-कुछ तो उसने अपनी तस्वीर में भी दिखाया था। मगर जब उसकी निगाह छतों पर से होती हुई ऊपर उठी तो एकदम उसे पता चल गया कि उसकी तसवीर में किस चीज़ की कमी है। सुर्ख़ी की कमी…

सारे आकाश पर ऊषा की लाली फैली हुई थी, जैसे किसी सुन्दरी ने—जैसे रजनी ने—सोकर उठते ही अपने चेहरे पर पाउडर-सुर्ख़ी मल ली हो। और इस गुलाबी आकाश की पृष्ठभूमि में गली की गन्दगी और स्याही और उभर आई थी। मगर यह मौत की स्याही नहीं थी, रात की स्याही थी—काली रात जो अब ख़त्म हो रही थी, सवेरे की सुर्ख़ी में घुलती जा रही थी…

उसकी तसवीर के आकाश को भी सवेरे की, नये दिन की, आशा की सुर्ख़ी से जगमगा उठना चाहिए। यह भावना बिजली की तेज़ी के साथ उसके दिमाग में चमकी। मगर यह सुर्ख़ी आए कहाँ से? उसके पास लाल रंग तो था ही नहीं, न बाज़ार से ख़रीदने को पैसे थे

चित्र के आकाश में सुर्ख़ी तो ज़रूर होनी चाहिए

गोपाल को याद आया कि उसी दिन तसवीर को प्रदर्शिनी के लिए भेजना था…

मगर सुर्ख़ी न हुई तो तसवीर पूरी न होगी, अधूरी रहेगी। अधूरी ही नहीं, झूठी होगी…

सुर्ख़ी कहाँ से आए?

ऊपर आसमान पर सुर्ख़ी छाई हुई थी, मगर गोपाल के हाथ वहाँ तक न पहुँच सकते थे कि ऊषा के चेहरे से उतारकर अपनी तसवीर में

"यह है सच्ची कला।"

"ज़िन्दगी का यथार्थ रूप।"

"कितनी जान है इस तसवीर में! मुँह से बोलती है।"

"गोपाल ने चित्र नहीं बनाया, जीवन को दर्पण दिखाया है।"

"मगर दो सौ रुपये बहुत हैं इस तसवीर के।"

"कला का कोई मूल्य नहीं होता।"

"इस चित्र से रूमानी कला का युग समाप्त होता है और नई प्रगतिशील कला के युग का आरम्भ होता है।"

"कितनी गहरी निगाह है आर्टिस्ट की—हर छोटी चीज़ तक पहुँची है।"

"ऐसा लगता है, कलाकार ने महीनों इस गली में जा-जाकर वहाँ के जीवन का गहरा अध्ययन किया है।"

"इस पूरी गली को सिर्फ काले रंग से पेन्ट किया, इस ख़्याल की भी दाद देनी पड़ती है।"

"कितनी उदासी है इस स्याही में, कितना दुःख, कितना दर्द, कितना गहरा सन्नाटा—जैसे एक गली की तस्वीर न हो, दुनिया के सारे गरीबों के जीवन की तस्वीर हो।"

"हाँ, मगर आसमान पर जो ऊषा की लाली है, असल कमाल तो यह है जिससे तस्वीर का मतलब ही बदल जाता है। बजाय निराशा के, यह चित्र जनता के प्रकाश-युक्त भविष्य की झलक दिखाता है।"

"यह सुर्ख़ रंग का इस्तेमाल सचमुच खूब किया है।"

"और यह मामूली लाल रंग नहीं है—खून-जैसा सुर्ख़ है, जिसमें हल्की-हल्की स्याही दौड़ती जा रही है।"

"आर्टिस्ट ने जान-बूझकर यह रंग लगाया है—मानो नये सवेरे की लाली जनता के ख़ून से जन्म लेती है।"

"जनता के ख़ून से, या कलाकार के ख़ून से?"

और इस पर सब ठट्ठा मारकर हँस पड़े। इतने में किसी ने कहा—

मैं कौन हूँ

"हाँ, तो तुम सब जानना चाहते हो कि मैं क्यों हँस रहा हूँ ..

"तुम जानना चाहते हो कि एक आदमी जो मरने के करीब हो, कैसे खिलखिलाकर हँस सकता है ..."

"तुम रहने दो, डाक्टर साहब, क्यो तकलीफ करते हो ? अपनी डिस्पेन्सरी मे कुनैन मिक्सचर और एस्पिरीन की गोलियाँ बेचो, तुम मुझे मरने से नहीं बचा सकते । बात यह है कि मुझे एक छोड़ दो घाव लगे हैं। एक पसलियों में आर-पार कमर से लेकर कलेजे तक। दूसरा पेट में। देखते नहीं, आतें बाहर निकल आई है

"हाँ, तो तुम सब जानना चाहते हो कि मरता हुआ आदमी कैसे हँस सकता है ? मैं अभी बताता हूँ बात यह है कि मुझे याद आ गया है कि मैं कौन हूँ। क्या कहा तुमने बडे मियाँ ? इसमे हँसी की क्या बात है ? कमाल किया तुमने, हँसी की नहीं तो क्या रोने की बात है ? एक महीने से मैं यह मालूम करने की कोशिश कर रहा था कि मैं कौन हूँ। हिन्दू या मुसलमान या सिक्ख, जिसके बाल और दाढ़ी ज़बर्दस्ती मूँड दिये गए हों और ज़बर्दस्ती ख़तना कर दिया गया हो। ब्राह्मण या अछूत ? .. अमीर या गरीब ? . . पूर्वी पंजाब का रहने वाला या पच्छिमी पंजाब का ?.. . लाहौर का रहने वाला या अमृत-सर का ? . रावलपिंडी का या जालंधर का ? मैंने कहा नहीं,

बल्कि बहुत-से लोगों ने यह मालूम करने की कोशिश की कि मैं कौन हूँ, मेरा धर्म क्या है, जाति क्या है, नाम क्या है ?··· पर किसी को नहीं मालूम हो सका······खुद मुझे याद आ गया। पर याद आया तो अब ···अब, जब कि मैं मर रहा हूँ···

"डाक्टर साहब ! तुम इतने परेशान न हो, नहीं तो तुम्हारी शक्ल देखकर मुझे और हँसी आयगी। यकीन मानो कि तुम क्या, अब दुनिया का कोई डाक्टर भी मुझे नहीं बचा सकता। मैं जानता हूँ कि तुम किस सोच-विचार में पड़े हो ? मेरे दो घाव इतनी बेढब जगहों पर लगे हैं कि तुम्हारी समझ में नहीं आ रहा है कि पहले किसकी मरहम-पट्टी करो। पहले चित लिटाकर आँतों को अन्दर डालकर सीते हो तो इतनी देर में कमर वाले घाव से इतना खून बह जायगा कि एक टाँका भी न लगा सकोगे और मैं मर चुकूँगा। और अगर तुम उल्टा करके पहले कमर के घाव की खबर लेते हो तो इतनी देर में अन्तड़ियाँ तो अन्तड़ियाँ सारा कलेजा बाहर निकल आएगा ''

"हाँ, तो बात यह है कि एक महीना हुआ जब मेरा दिमाग न जाने कितने दिनों के बाद एक अँधेरे सपने से बाहर निकला और मैंने अपने आपको देहली के एक सरकारी अस्पताल में पड़ा पाया तो मेरी याद एकदम गायब हो चुकी थी। डाक्टर ने पूछा—'तुम्हारा नाम ?' "

"मैंने बहुत सोचा, दिमाग पर ज़ोर डाला। फिर कहना पड़ा—'याद नहीं।' "

"हिन्दू हो या मुसलमान ?" डाक्टर ने दूसरा सवाल किया। मुझे यह भी याद नहीं था।

"कुछ भी याद नहीं था। धर्म, मज़हब, जाति, जमाअत, देश, शहर, मुहल्ला, यह भी याद नहीं था कि मेरी शादी हो चुकी है या कुँआरा हूँ, या रँडुआ। और-तो-और मुझे अपनी उमर का भी कोई अन्दाज़ नहीं था। न जाने क्यों होश आने पर मेरा ख़याल था कि मैं

काफ़ी जवान हूँ। लेकिन जब एक नर्स ने आइना दिखाया तो मैं अपनी शक्ल देखकर डर गया। सर के आधे बाल सफ़ेद, आठ दस दिन की बढ़ी खिचड़ी रंग की दाढ़ी। आँखें अन्दर धँसी हुईं, चेहरे पर झुर्रियाँ, गरज़ यही हुलिया जो अब भी तुम लोग देख रहे हो। हाँ, उस वक्त सर के सफ़ेद बालों में खून की मेंहदी नहीं लगी थी, जो अब लगी हुई है। देखा, तुम भी हँस दिये। खून की मेंहदी ? औरतें हथेलियों पर लगाती हैं और बूढ़े मर्द सिर के सफ़ेद बालों में। अब खुद ही बताओ कि यह सोचकर हँसी क्यों न आए . "

"हाँ, तो दिल्ली के डाक्टरों ने बहुत कोशिश की कि मेरा नाम, पता, धर्म, मज़हब मालूम हो जाय, पर कुछ पता न चला। मैंने खुद बड़ी दौड़-धूप को, क्योंकि बिना अपना नाम जाने हुए ऐसा लगता था जैसे मैं ज़िन्दा नहीं हूँ, मुर्दा हूँ। पूछताछ करने पर पता चला कि पचास-साठ और घायलों के साथ मुझे पंजाब से लाया गया है। मैंने सवाल किया कि बाकी ज़ख्मी हिन्दू थे या मुसलमान तो मालूम हुआ कि हिन्दू भी थे, सिक्ख भी और मुसलमान भी। हुआ यह था कि अमृतसर और लाहौर के बीच एक-एक करके दो रेलें पटरी से उतार दी गई थीं। एक में पच्छिमी पंजाब से हिन्दू अमृतसर आ रहे थे, दूसरी में पूर्वी पंजाब से मुसलमान लाहौर जा रहे थे। रात के ग्यारह बजे के क़रीब एक स्पेशल के नीचे बम फटा। पहिये पटरी से नीचे आ , इंजन उलट गया। कितने तो वैसे ही मर गए, बाकी मुसाफ़िरों गोलियाँ बरसने लगीं। रात के अँधेरे में घायल गिरते-पड़ते इधर उधर भागे। इसके बाद उस जगह से मील-भर दूर दूसरी स्पेशल पर जो उल्टी तरफ से आ रही थी, हमला हुआ। इस बार बम की ज़रूरत नहीं पड़ी। गाड़ी जैसे ही एक मोड़ पर हल्की हुई, उस पर मशीन गन की गोलियों की बौछार पड़ी। ड्राइवर, गार्ड और बहुत से मुसाफ़िर जो खिड़कियों के पास बैठे थे, तुरन्त खतम हो गए। इंजन मस्त हाथी की तरह पड़बड़ाता गाड़ी को घसीटता चला गया पर थोड़ी ही

मौत से पहले ही मरने वाले पर मँडलाते रहते हैं।

"किसी ने मुझे बताया कि जब मुझे हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की सरहद पर इस तरह बेहोश पड़ा पाया गया कि मेरी एक टाँग हिन्दुस्तान में थी तो दूसरी पाकिस्तान में। एक हाथ इधर तो दूसरा उधर। उस वक्त मेरे बदन पर एक फटी हुई सलवार और खून में लथपथ कमीज़ थी। कौन कह सकता था कि यह पंजाबी हिन्दू का लिबास है या पंजाबी मुसलमान का। खैर, न जाने क्यों मुझे देहली ले आया गया। मुझे घाव तो मामूली आए थे, जो जल्दी अच्छे हो गए, लेकिन डाक्टर कहते थे कि दिमाग़ में कोई गहरी अन्दरूनी चोट आई है जिससे याद ग़ायब हो गई है।

"हाँ साहब! तो मैं दुनिया में एक बड़ा ही अजीब आदमी बन गया। जिसको न अपना नाम याद था, न अपना पता, न धर्म। मेरी तसवीरें हिन्दुस्तान भर के अखबारों में छपीं और पाकिस्तान के अखबारों में भी, लेकिन मेरे किसी रिश्तेदार, दोस्त या जानने वाले ने मेरी खबर न ली। शायद सब-के-सब खतम हो चुके थे। शायद सिरे से मेरा कोई रिश्तेदार, कोई दोस्त या कोई जानने वाला था ही नहीं। और इस बीच में घाव अच्छे होने पर मुझे अस्पताल से निकाल दिया गया। मैंने सोचा मेरे जैसे मुसीबत के मारे के लिए कहीं तो दो रोटियों का इन्तज़ाम हो ही जायगा।

"फिरता-फिराता जामे मस्जिद के पास एक कैम्प में पहुँचा।" मैंने कहा—'मैं मुसीबत का मारा हूँ, मुझे पनाह दो।' कैम्प के मैनेजर ने पूछा—'हिन्दू हो या मुसलमान?' मैंने जवाब दिया—'याद नहीं।' और यही सच भी था। झूठ बोलने की मेरी ख्वाहिश ही नहीं थी। मैनेजर ने टका-सा जवाब दे दिया—'यह कैम्प सिर्फ मुसलमानों के लिए है।' सड़कों की खाक छानता पुरानी दिल्ली से नई दिल्ली पहुँचा। वहाँ एक बहुत बड़ा कैम्प दिखाई पड़ा। दरबान पर मैंने कहा—'मैं बड़ा दुखी हूँ, तीन वक्त से दाना पेट में नहीं गया, मुझे

है कि शायद यह मुसलमान ही हो। मैंने उनकी आँखों में बदले की खूनी चमक देखी और मैंने सोचा शायद मैं सचमुच मुसलमान ही हूँ। शायद जख्मी होने से पहले मैंने भी वह सारे जुल्म किये हों जो इन बेचारों पर हुए हैं। शायद मैं इसी काबिल हूँ कि मुझसे बदला लिया जाय ''उसी रात मैं वहां से भाग गया।

"फिर कई दिन के फ़ाक़े, सड़कों की ख़ाक, यह कैम्प हिन्दुओं के लिए है, यह कैम्प मुसलमानों के लिए है, तुम्हारा नाम क्या है तुम्हारा धर्म क्या है, कहाँ से आए हो?

"जब कहीं पनाह न मिली और कमज़ोरी के मारे चलना मुश्किल हो गया तो मैं जामे मसजिद की सीढ़ियों पर लेट गया। सामने मैदान में हज़ारों मुसलमान पड़े हुए थे जो पूर्वी पंजाब से भागकर आए थे। दिन-भर पड़े रहने के बाद मुझे होश भी न रहा। न जाने कब तक यों ही पड़ा रहा। एक बार होश आया तो ऐसा मालूम हुआ जैसे कोई मेरे पास ही खड़ा हो। आँख उठाकर देखा तो एक बच्चा था। मुश्किल से आठ बरस का होगा। कहने लगा—'लो यह खा लो। अम्माँ ने भेजा है कि किसी भूखे को खिला आओ।' बिना सहारे के मेरे से उठना भी मुश्किल था। उस बेचारे ने हाथ का सहारा दिया तो मैं उठकर बैठ गया। उफ़, कितनी मज़ेदार थी वे रोटियाँ और वह दाल। खाना खाकर मैंने बच्चे से कहा—'जीते रहो बेटा।' और [illegible]व से उसके नन्हें हाथ को छुआ तो वह बोला—'अरे तुम्हें तो [illegible]र है, चलो मेरे अब्बा के पास चलो। वह हकीम हैं, तुम्हें दवा [illegible], तुम फौरन अच्छे हो जाओगे''

"हाँ, तो वह मुझे अपने घर ले आया। हकीम जी बेचारे बड़े भले आदमी थे। पाँच वक्त नमाज पढ़ते और कितने ही आदमियों का हर रोज मुफ्त इलाज करते। दवा अपने पास से बिना दाम देते। उन्होंने दो ही दिन में मेरा बुख़ार उतार दिया। पर मेरी खोई हुई याद वह भी वापस न ला सके। मैंने उन्हें अपना पूरा हाल बता दिया था।

गया। हमारे डिब्बे में भी हत्यारे घुस आए, लेकिन मेरे नौजवान साथी ने मुझे चादर से ढाँप दिया, जब उन्होंने पूछा कि यह कौन है, तो उसने कह दिया कि यह तो मेरा भाई है। बेचारा पहले ही लाहौर में जख़्मी हो चुका है। वह चले गये। गोलियां चलने की आवाज आई, फिर कुछ चीखने-चिल्लाने की आवाजें हुईं और फिर ट्रेन रवाना हुई। मैं बम्बई पहुँच गया लेकिन यहां भी इस मनहूस सवाल ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा कि मैं हिन्दू हू या मुसलमान। मैं सोचता—हिन्दू कौन है? मुसलमान कौन है? सिक्ख कौन है? हिन्दू वह नौजवान है जिसने एक दाढ़ी वाले की जान बचाई, जिसको वह मुसलमान समझता था, या वह दरीबे वाले जिन्होंने हकीमजी के मासूम बच्चे को कत्ल कर डाला? मुसलमान हकीमजी हैं, या वे सब जिन्होंने रावलपिंडी में सरदारजी के रिश्तेदारोंको कत्ल किया और उनकी औरतों को बेइज़्ज़त कर डाला? सिक्ख सरदारजी हैं या वह शूरमा जिन्होंने अमृतसर में सैकड़ों मुसलमानों को घरों में भून डाला? फिर भी वही सवाल—हिन्दू हो? मुसलमान हो?

'एक सवाल—'तुम कौन हो?' तुम हिन्दू हो?' ' तुम मुसलमान हो ' ?'

"यह सवाल मेरे दिमाग में हर वक्त गूँजता रहता—मैं कौन हू? मैं कौन हूँ? हिन्दू हूँ? मुसलमान हूँ? सिक्ख हूँ? मैं कौन हूँ? चलते फिरते, उठते-बैठते, सोते-जागते यह सवाल मेरा पीछा करता। ख्वाब में मुझे दहकते हुए अंगारों-जैसी आँखों वाले प्रेत घेर लेते और आग में तपे हुए भाले मार-मारकर पूछते—'तू कौन है? बोल तू हिन्दू है या मुसलमान?' और मैं नींद में चिल्ला उठता—'मुझे नहीं मालूम मैं कौन हू, मुझे छोड़ दो, मैं कुछ नहीं हूँ। मैं सिर्फ एक इन्सान हू।'

"बम्बई में पंजाब से आये हुए लोगों के लिए बड़े-बड़े कैम्प खुले थे। सिक्ख हो तो खालसा कालेज जाओ, हिन्दू हो तो राम-कृष्ण आश्रम में शरण लो, मुसलमान हो तो भिंडी बाजार में मुस्लिम लीग

बड़ा ढेर। आसमान तक · वैसाखी का मेला दूर कोई बांसुरी बजा रहा है ढोलक की आवाज़ करीब होती जा रही है · नीम के तले औरतें बैठी गा रही हैं" · 'शाबाश' डाक्टर बोला—'कौन सा गीत गा रही हैं ?'

"मैंने उसे बताया—'ओजड़ों माही याद आवे हाय हाये चुन दे हंजू ढल ढल पेंदे ने।'

"यह गीत हिन्दू औरतें गाती हैं या मुसलमान औरतें ?' डाक्टर ने पूछा। मैंने कहा—'पंजाबी औरतें गाती हैं। देखो वे सब मिल कर अन्तरा उठा रही है ?' 'यह औरते कौन है, हिन्दू या मुसलमान ?' 'पंजाबी हिन्दू भी मुसलमान भी।'

"डाक्टर की भारी साँस की आवाज़ आई। जैसे इस जवाब से उसका बना बनाया काम बिगड़ गया। फिर वह बोला—'शाबाश, बोले जाओ, जो कुछ भी याद आए।'

"एक बहुत बड़ा बाग़ · मेला सा लगा हुआ रंगीन शलवारें और कमीज़ें दुपट्टे हवा में लहराते हुए · चंचल लड़कियों के ठहाके · बच्चों का शोर

" 'शाबाश, शाबाश, बोले जाओ चुप क्यों हो गए ?'

"अब कुछ सुनाई नहीं देता, कुछ दिखाई नहीं देता।

" 'क्यों क्या हुआ ?'

"मेरे सर में दर्द हो रहा है। हर तरफ अंधेरा छाया हुआ है। एक अजीब सा शोर ···

" 'शाबाश ! शाबाश !'

"आग लग रही है। हर तरफ शोले-ही-शोले शोर बढ़ता जा रहा है।

" 'शाबाश !' यह फ़सादियों का शोर है। ये वही लोग हैं, जिनके ज़ुल्म ने तुम्हारे घर-बार को तबाह कर डाला। तुम्हारे रिश्तेदारों का ख़ून कर डाला। तुम्हारे दिमाग़ को बिगाड़ दिया। सुनो, शोर में

सुनो। ये क्या कह रहे हैं ?"

"कुछ सुनाई नहीं देता। शोर बहुत है। बस एक लफ्ज़ समझ में आता है—मारो ! मारो !! मारो !!! "मुझे बचाओ डाक्टर साहब !

"'घबराओ नहीं फिर गौर से सुनो। ये लोग जो आग लगा रहे हैं, शोर मचा रहे हैं ये हिन्दू हैं या मुसलमान ? अभी पता लग जाता है कि तुम कौन हो।'

"और मेरे दिमाग में जैसे ख़तरे की घण्टी बजी। अभी मालूम हो जाएगा मैं कौन हूँ। अभी मालूम हो जायगा मैं कौन हूँ—मैं मुसलमान हूं। मैंने सरदार जी के घर वालों का, हज़ारों बेगुनाह सिक्खों का खून किया है ..

"मैं हिन्दू हूँ मैंने हकीम जी के बच्चे और सैकड़ों मासूम मुसलमान बच्चों को कत्ल किया है।

"नहीं ! नहीं !! मैं चिल्लाया—'मैं नहीं मालूम करना चाहता कि मैं कौन हूं। मैंने आँखें खोल दीं। डाक्टर की नर्म आवाज़ के जादू को तोड़ डाला। मैं कोच से उठ खड़ा हुआ। मैं डाक्टर को हैरान और परेशान छोड़कर चला आया।

"मैं हिन्दू हूं, मैं मुसलमान हूँ। मैं मुसलमान हूँ, मैं हिन्दू हूँ। मैं क्या हूँ ? कुछ भी नहीं हूँ। मैं मुसलमान हूँ, मैं हिन्दू हूँ।

"रास्ते-भर मेरे कानों में यही आवाज़ें आती रहीं।

"न जाने मैं किस रास्ते किस इलाके से होकर चला जा रहा था कि किसी ने टोका—'ए किधर जाता है ? कौन है तू ?' वह एक मुसलमान मवाली था। उसकी आँखों में खून, उसके हाथ में एक छुरा था। मैंने उसका सवाल सुना, मगर समझा नहीं। उसकी तरफ़ एक नज़र देखकर फिर अपने रास्ते चल पड़ा। मैं उसी तरह बड़बड़ाए जा रहा था—'मैं हिन्दू हूं, मैं ··

"अभी मैं 'मैं मुसलमान हूँ' न कह पाया था कि उसका छुरा मेरी

कमर में धँस गया। यही घाव जो आप देख रहे हैं, 'काफिर का बच्चा' मैं चकराया, मगर गिरते-गिरते सँभल गया। चलता ही रहा। अगरचे मेरे पीछे खून की एक गहरी लकीर सड़क पर पड़ती जा रही थी, तुम्हें यकीन नहीं आता? मैं मर रहा हूँ, मुझे तुमसे सच्चाई का सर्टिफिकेट नहीं चाहिए······

"हाँ तो गिरता-पड़ता किसी और सड़क पर निकल गया। इस बार एक हिन्दू गुण्डे ने मुझे रोका। 'ऐ, कौन है तू?'

"मैं मुसलमान हूँ, मैं··· ···' और अभी 'हिन्दू हूँ' न कह पाया था कि उसकी तेज़ धार वाली खोखरी ने मेरा पेट फाड़ दिया ···

"तो इस तरह यह दोनों घाव खाए हैं मैंने। मुझे हिन्दू-मुसलमान दोनों ने मारा है, तभी तो कहता हूँ डाक्टर साहब कि तुम मुझे नहीं बचा सकते। और न तुम सब बचा सकते हो जो मेरे मरने की राह देख रहे हो। और सच्ची बात यह है कि तुम लोग मुझे बचाना चाहते ही नहीं। अगर मैं मरते-मरते यह कह दूँ कि मैं हिन्दू हूँ तो यह हिन्दू वीर फ़ौरन मेरे बदले चार मुसलमानों को क़त्ल करने का बीड़ा उठा लेंगे और अगर मैं कहूँ कि मुसलमान हूँ तो यह बहादुर मुसलमान पूरी हिन्दू कौम से मेरा बदला लेने को तैयार हो जायँगे। और मैं हँस रहा हूँ, क्योंकि मुझे याद आ गया है कि मैं कौन हूँ। अपनी घरवाली की आँखें, अपने बच्चे की बातें, अपना खेत, अपना घर बार, जो जल चुका है, मुझे सब याद आ गया है। अब जब मैं मर रहा हूँ तुम सब बेकार इन्तजार कर रहे हो। मेरी ज़बान से हरगिज़ न निकलेगा कि मैं हिन्दू हूँ या मुसलमान, न मेरे हिन्दू क़ातिल को मालूम होगा न मुसलमान क़ातिल को कि उनमें से किसने गलती से अपनी ही क़ौम के आदमी को मार डाला। उनसे मैं यही बदला ले रहा हूँ। उनसे ही नहीं, उन जैसे हज़ारों हिन्दुओं, मुसलमानों और सिक्खों से जिन्होंने मेरे देश पंजाब को मटियामेट कर डाला। मेरी बूढ़ी भारतमाता के सफ़ेद बालों में खून की मेंहदी मल दी। मैं हिन्दू था या मुसलमान?

डैड लैटर

"डार्लिङ्ग ?"

"जी ?"

"प्रसादजी ने आज शाम को ब्रिज और खाने के लिए बुलाया है। याद है ना ?"

"जी।"

"तो मैं ऑफिस से साढ़े पाँच तक आ जाऊँगा। तुम तैयार रहना।"

"जी।"

जी! जी!! जी!!! बारह वर्ष से वह यह एक अक्षरी शब्द अपनी पत्नी की ज़बान से सुन रहा था। दस बातों में से नौ का जवाब वह केवल "जी" से देती थी, जैसे पढ़ाया हुआ तोता केवल एक शब्द बोल सकता हो। जी! जी!! जी!!

सुधीर सक्सेना, आई० सी० एस०, डिप्टी कमिश्नर, ज़िला नारायणगंज, के बारे में हर एक की राय थी कि दुनिया में उससे बढ़कर सौभाग्यशाली कोई न होगा। ऊँचा ओहदा, अच्छा वेतन, रहने के लिए आरामदेह मकान, विमला-जैसी व्यवस्था-पसन्द और पढ़ी-लिखी पत्नी जो कमिश्नर साहब के साथ ब्रिज खेल सकती थी, राजा साहब रामनगर के साथ डान्स कर सकती थी, तीन सुन्दर और चतुर बच्चों की माँ थी। सबसे बड़ा रणधीर, जो दस वर्ष की उम्र ही में नैनीताल के एक अंग्रेज़ी स्कूल में जूनियर केम्ब्रिज में पढ़ रहा था और अपनी क्लास का निक-

टीम का कप्तान था और बिलकुल एंग्लो-इंडियन लड़कों की तरह अंग्रेज़ी में बातचीत कर सकता था। उससे छोटी सात-वर्षीया ऊषा, जो माँ की तरह ही दुबली-पतली नाज़ुक बदन थी और वैसी ही बड़ी-बड़ी आँखें थीं और वैसे ही सुनहरे बाल थे, वह नारायणगंज ही के एक कान्वेण्ट स्कूल में थर्ड स्टैंडर्ड में पढ़ रही थी और उसे सारे नर्सरी-राइम्स ज़बानी याद थे और "ट्विंकल ट्विंकल लिट्ल स्टार" जैसी कविताएँ तो वह फर्राटे से गाकर सुना सकती थी और फिर सबसे छोटी शान्ति, जो अभी मुश्किल से तीन वर्ष की थी और "बेबी" कहलाती थी और माता-पिता दोनों की आँख का तारा थी, और बड़े प्यारे अन्दाज़ से तुतला-तुतला कर "डैडी टाटा' या "ममी बाई-बाई" कहना सीख रही थी।

हाँ, तो सभी सुधीर सक्सेना आई० सी० एस० को सबसे सौभाग्यशाली समझते थे। और कभी-कभी वह खुद भी यही समझता था। जो कुछ उसे हासिल था उससे अधिक जीवन में कोई किस चीज़ की आशा कर सकता है? मगर फिर वह अपनी पत्नी की ज़बान से यह एक-अक्षरी शब्द "जी" सुनता—विमला के फीके, बेरंग, थके हुए अन्दाज़ में—और उसकी खुशी और खुश-क़िस्मती दोनों पर सन्देह और एक हद तक निराशा के बादल छा जाते।

"जी"

कब से यह शब्द उसके जीवन में गूँज रहा था!

बारह वर्ष हुए, वे पहली बार मसूरी में मिले थे। सुधीर एक महीना हुआ, इंग्लिस्तान से आया था और नियुक्त होने से पहले कुछ सप्ताह छुट्टी मनाने आया हुआ था। मसूरी खाते-पीते घरानों की सुन्दर सुसज्जित और दिलचस्प लड़कियों से भरा हुआ था। लाइब्रेरी के सामने हर शाम को लहराती हुई रंगीन साड़ियों, चुस्त कमीज़ों, रेशमी सलवारों, और गले में झूलते हुए दुपट्टों की नुमाइश होती थी। ऊँची एड़ी के जूतों पर इठलाती हुई चाल, निडर निगाहें, शोख जवानियाँ, रसीली चितवनें, रंगे हुए होंठ, बारीक की हुई भवें, पाउडर से दमकते

हुए गाल, पर्म किए हुए बाल। हर नौजवान को ध्यान देखने की खुली दावत थी। मगर न जाने क्यों सुधीर को सारे मसूरी में सूरत पसन्द आई तो सिर्फ एक—विमला—जिससे पहली बार उसकी भेंट "हैकमैन" होटल में एक शाम को "टी-डान्स" के दौरान में हुई थी।

"हलो सुधीर" उसके पटना के मित्र माथुर ने उसे हाथ से इशारा करके अपनी मेज़ की तरफ़ बुलाते हुए कहा था।, "यहाँ आओ, यार और इनसे मिलो। आप हैं विमला बनर्जी। हैं बंगाली, मगर लखनऊ में पली हैं। वहीं कालिज में पढ़ती हैं।"

सुधीर ने देखा कि बग़ैर पाउडर के गोरे गोरे चेहरे पर दो बड़ी-बड़ी आँखें हैं जिनकी गहराई में कोई दुःख डूबा हुआ है और उनके गिर्द काले गड्ढे हैं और लम्बी नुकीली शर्मीली पलकें हैं, जो रातों को जागे हुए पपोटों के बोझ से झुकी जा रही हैं।

वह माथुर के अनुरोध की प्रतीक्षा किए बिना ही विमला के पास की कुरसी पर बैठ गया और फिर उसके लिए उस खचाखच भरे हुए बाल-रूम में विमला के सिवा और कोई न था।

बारह बरस के बाद भी उनकी वह सबसे पहली बातचीत आज तक उसकी याद में ताज़ा थी।

"तो आप आई० टी० कालिज में पढ़ती होंगी ?"

"जी।"

"बी० ए० में ?"

"जी।"

"अगले साल फाइनल की परीक्षा देंगी ?"

"जी।"

दो वर्ष तक अँग्रेज़ स्त्रियों का कर्कश मर्दाना स्वर सुनने और एक सप्ताह मसूरी की चीख़-पुकार में गुज़ारने के बाद कितनी शान्ति थी विमला के कम बोलने में ? जैसे आँधी और तूफ़ान और गड़गड़ाहट के बाद वर्षा थम गई हो और गुलाब की पंखड़ियों पर से कुछ नन्हीं-नन्हीं

सिर्फ़ इस बार उसने "जी" कहकर जवाब नहीं दिया। एक अजीब-सी, थकी हुई, बुझी हुई-सी मुस्कराहट के साथ बोली—"बुलबुले की ज़िन्दगी भी कितनी होती है। हवा का एक हलका सा झोंका भी आगा और बुलबुला टूट गया। बस—ख़त्म—"

जब तक वह मसूरी में रहा, उसका अधिकतर समय विमला की सोहबत में गुज़रा। इकट्ठे वे चढाल चोटी तक चढ़े, कैम्प्टी फ़ाल देखने गए।

इन तमाम दिनों में विमला ने मुश्किल से एक दर्जन वाक्य उससे कहे होंगे। सुधीर की बातों को वह बड़ी ख़ामोशी और एकाग्रता से सुनती। जब तक वह सीधा सवाल न करता, वह किसी बात पर भी अपनी राय न देती। मगर सुधीर को विमला के कम बोलने से कोई शिकायत न थी। बातूनी लड़कियाँ जो संसार के हर सवाल पर राय रखती हैं और उसको व्यक्त करना आवश्यक समझती हैं, उसे बिलकुल पसन्द न थीं। उसे तो यही अच्छा लगता था कि वह बोलता जाय और विमला बैठी सुनती रहे और "जी-जी" करती रहे। जब सुधीर को विश्वास हो गया कि वह विमला को बहुत पसन्द करने लगा है बल्कि शायद उससे प्रेम भी करने लगा है, तो एक दिन एकान्त म अवसर पाकर उसने "प्रोपोज़" कर ही डाला।

"विमला, तुम्हें मालूम है न कि मैं तुम्हें पसन्द करने लगा हूँ?"

"जी।"

"तुम्हारे बिना मैं नहीं रह सकता। क्या तुम मुझसे शादी करोगी?"

"जी।" इस "जी" में सवाल भी था, और जवाब भी।

थोड़ी देर की ख़ामोशी के बाद वह बोली—"देखिए, मैं आपका बहुत आदर करती हूँ। इसीलिए मैं आपको धोखा नहीं देना चाहती। मैं आपसे प्रेम नहीं करती।"

"क्या तुम किसी और से प्रेम करती हो?"

विमला की ज़बान से "जी नहीं" भी कभी ही निकलता था। मगर

विमला-जैसी पत्नी पाई है। भैया, हमें दुआएँ दो कि उस दिन "ठेक-मैन्स" में तुम्हारी भेंट उससे कराई। मगर इस दुनिया में कौन किसी का अहसान मानता है?"

"सुना तुमने, माथुर ने क्या लिखा है?"

"जी?"

सुधीर ने विमला के विषय में जो वाक्य माथुर ने लिखे थे, वे पढ़कर सुनाए, और फिर दूसरे पत्रों को खोलकर पढ़ने में व्यस्त हो गया। और उसने यह नहीं देखा कि माथुर के दोस्ताना मज़ाक़ को सुन कर विमला की आँखों में कोई चमक पैदा नहीं हुई। केवल होंठों पर एक कड़वी-सी मुस्कराहट का तनाव पैदा हुआ और फिर एकाएक गायब हो गया।

दूसरा पत्र जो सुधीर ने खोला, वह क्लब का बिल था। वह उसने विमला की तरफ़ बढ़ा दिया क्योंकि बिलों का भुगतान वही करती थी। तीसरा पत्र आई० सी० एस० एसोसिएशन से आया था, वार्षिकोत्सव और चुनाव के विषय में।

"सुना विमला, तुमने? इस साल बलदेव और अहसान वगैरह सेक्रेटरी के लिए मेरा नाम "प्रोपोज़" करना चाहते हैं?"

"जी?"

चौथा पत्र—मगर यह उसके नाम नहीं, विमला के नाम था। वह मोटा मगर पीला पुराना सा लिफाफा जिस पर कितनी ही मुहरें लगी हुई थीं और कई बार पते में काट-छाट की हुई थी। और यह क्या? मिस विमला बैनर्जी! यह कौन बदतमीज़ है, जो मिसेज विमला सक्सेना को शादी के बारह वर्ष बाद भी "मिस" लिखता है? सुधीर ने एक नज़र विमला की ओर देखा जो उस समय नौकर को डोनर के खाने के बारे में हिदायतें देने में व्यस्त थी। यह इतमीनान करने के बाद कि विमला ने अपना पत्र नहीं पहचाना था, सुधीर ने सामने चायदान रखकर लिफाफा खोला। शादी के बाद कई वर्ष तक उसने

पर दे मारा हो—

"जी ?"

"अनिल कौन है ?"

सुधीर ने यह प्रश्न इतना अचानक किया कि कुछ क्षण तक विमला भौंचक्की खड़ी रही, जैसे समझी ही न हो कि उससे क्या पूछा गया है ? मगर फिर जैसे धीरे-धीरे सूर्य पर से बादल हट जाते हैं और बरसात की भीगी धूप ज़मीन पर फैल जाती है, इसी तरह एक धीमी मीठी नर्म मुस्कराहट उसके चेहरे पर खेल गई।

"अनिल ?" उसने नर्म आवाज़ में नाम दुहराया—जैसे माँ बच्चे का नाम लेती है, जैसे भक्त भगवान् का नाम लेता है, जैसे कवि अपनी प्यारी कविता गुनगुनाता है—और उसकी आँखें एक नये प्रकाश से चमक उठीं—वह प्रकाश जो बारह वर्ष तक सुधीर ने कभी अपनी पत्नी की आँखों में नहीं देखा था।

"हाँ, हां, अनिल ? कौन है वह ?" विमला की आँखों में उस नये प्रकाश को देखकर, सुधीर थापे से बाहर हो रहा था।

मगर विमला किसी दूसरी ही दुनिया मे थी। उसकी आँखें दूर—बहुत दूर—न जाने क्या देख रहीं। कोई बहुत सुन्दर दृश्य ? कोई दिलकश याद ? आशा की कोई किरण ?

"वह सब कुछ है" उसके मुस्कराते होंठों ने सुधीर से नहीं बल्कि दुनिया से कहा। फिर उन होंठों की मुस्कराहट बुझ गई और उन पर एक कड़वा व्यंग्य उभर आया। "और अब वह कुछ नहीं है" फिर किसी अज्ञात दुख के बोझ से उसकी गरदन झुक गई।

"पहेलियां मत बुझाओ।" सुधीर चिल्लाया। उसका जी चाहता था कि मेज को उलट दे, उन तमाम चीनी के बरतनों को चकनाचूर कर दे, चायदानी को उठाकर विमला के सिर पर दे मारे। "सच सच बताओ क्या तुम उससे प्रेम करती हो ?"

झुकी हुई गरदन फिर उठ गई। आँखों के डबडबाते आँसुओं में

बातों को नहीं समझोगे।" वह फिर अपने बेड-रूम में गई और वहाँ से अपनी छोटी बच्ची को गोद में लेकर बरामदे में से होती हुई बाहर निकल गई। उसके कदमों की आवाज दूर होती गई—यहा तक कि बाहर सडक के शोर में हमेशा के लिए खो गई।

सुधीर का विचार था कि वह रोएगी, गिड़गिड़ाएगी, अपने गुनाह की माफी मागेगी। भविष्य में अपने चरित्र को ठीक रखने का वादा करेगी। लेकिन वह इसके लिए तैयार नहीं था कि विमला सचमुच घर छोड़कर चली जायगी। इस खामोश तमाचे से उसका सारा बदन झनझना उठा, हथौड़े की तरह उसके दिमाग पर एक ही चोट पड़ती रही। अनिल! अनिल!! अनिल!!! यह अनिल कौन है? मै उसका पता लगाकर छोड़ूँगा। उस पर एक विवाहिता स्त्री को भगा ले जाने का दावा करूँगा, उसे जेल भिजवाऊँगा, उसे जान से मार दूँगा

पागलों की तरह दौड़ता हुआ वह विमला के कमरे में पहुंचा। उसे मालूम था कि अपनी वारड्रोब के एक खाने में विमला अपने पत्र इत्यादि रखती है। चाबियों का गुच्छा सामने पलंग पर पड़ा था—जाते वह फेंक गई थी। सुधीर ने वारड्रोब खोली, खाने को चाबी लगाकर बाहर खींचा। उसमे रखे हुए पत्रों के पुलिन्दों और कागजों को टटोला। सबसे नीचे की तह में लाल रेशमी फीते मे बँधे हुए कुछ पत्र रखे थे। जरूर ये अनिल के पत्र होंगे। उसका विचार ठीक निकला प्रत्येक पत्र में प्रेम का ऐलान—"विमला मेरी जान" "मेरी अपनी विमला" "मेरी अच्छी विमला" "तुम्हारा और सिर्फ तुम्हारा अनिल" "इस दुनिया में और अगली दुनिया में तुम्हारा···तुम्हारा" हर वाक्य एक ज़हरीले नश्तर की तरह उसके दिल में कचोके लगाता रहा। एक-एक करके वे पत्र जमीन पर गिरते रहे, मगर यह क्या? पत्रों के बीच म तह किया हुआ अखबार का एक पन्ना। खोलने पर देखा कि एक नव-युवक का चित्र—गहरी चमकती हुई आँखें, ऊँचा माथा, मुस्कराते हुए होंठ—के नीचे यह समाचार छपा हुआ था

नवयुवक कवि की मृत्यु

हमें यह सूचना देते हुए हार्दिक दुःख होता है कि लखनऊ के नवयुवक प्रगतिशील साहित्यकार और इन्कलाबी कवि अनिल कुमार 'अनिल' की मृत्यु हो गई है। सन् ३६ के सत्याग्रह में वह जेल गए थे और उन्हें वहीं तपेदिक की बीमारी हो गई थी।

सुधीर सारी खबर न पढ़ सका, इसलिए कि अखबार के टुकड़े पर तारीख दी हुई थी—१८, जून सन् १६४०।

उसके हाथ से बाकी पत्र और अखबार का टुकड़ा जमीन पर गिर पड़े। उसकी कुछ समझ में नहीं आया कि बात क्या है। अनिल! अनिल!! अनिल!!! क्या कोई मरकर भी ज़िन्दा हो सकता है?

खोए हुए मुसाफिर, हारे हुए जुआरी की तरह वह खाने के कमरे में वापस आया। मेज पर अनिल का पत्र और लिफाफा पड़े हुए थे। उसने लिफाफा उठाकर एक बार फिर ध्यान से देखा। दर्जनों गोल मुहरों के बीच एक चौकोर मुहर लगी हुई थी जिस पर अंग्रेजी के तीन अक्षर छपे हुए थे: डी० एल० ओ०—डैड-लैटर-ऑफ़िस।

अनन्नास और एटम बम !

पात्र

राज—एक पढ़ा-लिखा नौजवान प्रगतिशील कवि
रजनी—सुन्दर नौजवान लड़की, जिससे राज प्रेम करता है
सेठ लक्ष्मीचन्द—रजनी का बाप, लखपति, पूँजीपति
मगू—सेठ लक्ष्मीचन्द का नौकर

एक रेडियो
एक अनन्नास
एक एटम बम

[सेठ लक्ष्मीचन्द का ड्राइंग रूम। फर्नीचर, सजावट का सामान वगैरह बढ़िया है, मगर भद्दा। हर चीज भोंडेपन का नमूना। दीवार पर लटकी हुई तसवीरों में हनुमान जी भी हैं, देवी लक्ष्मी भी, गाँधी जी भी, और और कोई पुराना वाइसराय भी। तिजोरी पर राष्ट्रीय झंडा पड़ा हुआ है और उस पर एक गाँधी टोपी ऐसे रखी है जैसे सिंहासन पर राजमुकुट धरा हो। एक कोने में रेडियो लगा हुआ है। इस कमरे के तीन दरवाज़े हैं—एक खाने के कमरे में खुलता है, दूसरा रसोई में, और तीसरा सदर दरवाज़ा बाहर के बरामदे में। जब पर्दा उठता है तो कमरा खाली है मगर रेडियो चल रहा है। गाने का कोई प्रोग्राम खत्म हो रहा है।]

रेडियो ' अनाउन्सर—(आवाज़) अभी-अभी आप मुन्नी बाई से ध्रुपद सुन रहे थे। अब आप महान् नेता परम-पूज्य देशदास जी का अनाउ

पैरों इधर-उधर देखता हुआ राज आता है, जोर से सीटी बजाता है। रजनी चौंककर उठ बैठती है। राज को देखकर उसका चेहरा खुशी से खिल जाता है और वह दौड़ती हुई राज के पास जाती है। राज बांहें फैलाकर उसका स्वागत करता है।]

राज—रजनी !

रजनी—राज ! तुम आ गए ?

[वे एक-दूसरे के गले लगने ही वाले हैं कि खाने के कमरे से सेठ लक्ष्मीचन्द की गरजदार आवाज सुनाई देती है और वे दोनों घबराकर अलग-अलग हो जाते हैं।]

लक्ष्मीचन्द—(आवाज) मंगू ! अरे ओ मगू ! और पूरियां कहां हैं ?

मगू—(आवाज) कढ़ाई मे है, सेठजी

राज—कढ़ाई में हैं—सेठजी या पूरियां ?

रजनी—पूरियाँ रसोई में तली जा रही हैं। पिताजी खाने के कमरे मे भोजन कर रहे हैं।

राज—तो कोई चिन्ता नहीं है। (फिर रजनी की तरफ बढ़ता है।)

राज—(रूमानी अन्दाज मे) रजनी !

रजनी—हाँ, राज !

राज—आज मैं तुम्हारे पिताजी से साफ-साफ बात करने आया हूँ। अब तुम्हारे बिना एक दिन गुजारना मुश्किल हो गया है।

रजनी—(शर्माकर) राज, मेरा भी यही हाल है। जिस दिन तुमसे मुलाकात नहीं होती, सारा दिन फीका और बेमजा लगता है।

राज—(मज़ाक से) ऊँहुँ, तुम झूठ बोल रही हो।

रजनी—(गभीर होकर रूमानी अन्दाज मे) नहीं राज, मैं सच कह रही हूँ। तुम मेरे रोम-रोम में समा गए हो।

राज—यह तो फिल्मी डायलाग हुआ। अच्छा आओ, तुम्हारा मुँह सूँघकर देखूँ। कहते हैं, झूठ बोलने वाले के मुँह से बदबू आती लगती है।

ले आ।

राज—(आश्चर्य से लगभग बेहोश होते हुए।) दस बारह चार पूरियां!

लक्ष्मीचन्द—(आवाज़) और हाँ—भागकर बाज़ार से एक अनन्नास भी ले आ। हाजमे के लिए अच्छा होता है।

मंगू—(तंग आकर रजनी से) तुम्हीं बताओ, छोटी बीबी, रसोई में पूरियाँ तलूँ, कि खाना परोसूँ, कि बाज़ार में जाकर अनन्नास लाऊँ—घर भर में अकेला नौकर हूँ इस वक्त।

रजनी—और सब क्या हुए?

मंगू—(कानाफूसी करते हुए) छोटी बीबी, सेठजी से मत कहना। सब-के-सब सिनेमा देखने गए हैं, मैटनी शो से।

लक्ष्मीचन्द—(आवाज़) मंगू! अनन्नास ले आया है, तो थोड़ी पूरियाँ और तल ले।

मंगू—अब बताओ, छोटी बीबी, करूँ तो क्या करूँ?

रजनी—मंगू, तू जाकर पूरियाँ तल। मैं अनन्नास मँगवाती हूँ।

[मंगू रसोई की तरफ़ जाता है]

रजनी—राज, मुझे बड़ी ही बढ़िया तरकीब सूझी है।

राज—वह क्या?

रजनी—वह यह कि तुम भागकर नुक्कड़ वाली दुकान से एक अच्छा-सा अनन्नास ख़रीद लाओ। पिता जी को अनन्नास पसन्द भी है। तुम कहना, उनके लिए भेंट लाए हो। वह अनन्नास पाकर बहुत खुश होंगे—कि—(शर्मा जाती है।)

राज—कि हमारी शादी की इजाज़त दे देंगे। सच?

[रजनी शर्माकर सिर हिलाकर हाँ करती है।]

राज—यह क्या मुश्किल काम है। मैं अभी एक इतना बड़ा और रस भरा अनन्नास लाता हूँ कि सेठजी भी याद करेंगे।

[राज सदर दरवाज़े की तरफ़ से बाहर जाता है। रजनी गई।

जाकर बन्द हो जाती है। मगर पूरियाँ लेकर खाने के कमरे में जाता है, फिर वापस चला जाता है। रास्ते में एक नजर रजनी पर डालता है, जो रेडियो के मधुर संगीत और अपने रूमानी विचारों में खोई हुई है। एकदम संगीत का प्रोग्राम रुककर रेडियो स्टेशन से एक ऐलान होता है।]

रेडियो अनाउन्सर—(आवाज) तीसरे महायुद्ध की भयानक परछाईं सारी दुनिया पर पड़ रही है। कोई नहीं कह सकता, कब और कहाँ पहला एटम बम फट पड़े और एटमी लड़ाई शुरू हो जाय। लेकिन यह ज़रूर कहा जा सकता है कि अगर एक बार दुनिया के देशों ने एक दूसरे पर एटम बम बरसाने शुरू कर दिए, तो हजारों बरस की परवान चढ़ाई हुई संस्कृति, कला, प्रगति और साहित्य मिनटों में भस्म हो जायगा यही नहीं, सारा संसार भस्म हो जायगा और जिन्दगी खत्म हो जायगी

[रजनी इस खबर से परेशान होकर रेडियो बन्द कर देती है और उठ खड़ी होती है। उसी वक्त लक्ष्मीचन्द अन्दर के दरवाजे से दाखिल होता है तोंद पर हाथ फेरता हुआ।]

रजनी—(पिता को देखकर) पिताजी, गज़ब हो गया।

लक्ष्मीचन्द—क्यों, क्या हुआ ? जल्दी कहो।

रजनी—कहते हैं, शहर पर एटम बम गिरने वाले हैं।

लक्ष्मीचन्द—(हँसता हुआ) अरी पगली! तूने तो मुझे घबरा ही दिया था। मैं तो यह समझा कि सोने-चाँदी के भाव गिरने वाले हैं।

[आराम से सोफे पर बैठ जाता है।]

रजनी—मगर पिताजी, महायुद्ध शुरू हो गया तो सारे संसार का सत्यानाश हो जायगा।

लक्ष्मीचन्द—अरी मूर्ख! तुझे सारे संसार की क्या पड़ी है ? एटम बम हमारे घर पर थोड़े ही गिरने वाले हैं। लड़ाई छिड़ गई, तो तेरे बाप का तो भला ही होने वाला है। फौजी ठेके मिलेंगे, बाजार में चीज़ों के भाव चढ़ेंगे। हम एक-एक के दस-दस बनावेंगे—हे भगवान्! मैं प्रार्थना

करता हूँ कि कल की होती लड़ाई आज शुरू हो जाए। रजनी, मंगू को कह दो, अनन्नास काटकर ले आए, बर्फ में लगाकर।

रजनी—मंगू तो रसोई में है, खाना बना रहा है। मगर आप फिक्र न करें। अनन्नास अभी-अभी आए जाता है।

लक्ष्मीचन्द—मंगू अभी तक यहाँ है, तो अनन्नास लाने कौन गया है ?

रजनी—(शर्माकर) राज···राज आया था। आप से कुछ बात करने। उसने सुना, आपको अनन्नास बहुत पसन्द है, इसलिए दौड़ा हुआ बाज़ार गया है आपके लिए अनन्नास लाने।

लक्ष्मीचन्द—कौन राज, वह फोकट कवि ! जेब खाली, पर ज़बान जितनी चाहो चलवा लो। कविता लिखता है और वह भी एटम बम पर। वह क्या अनन्नास लाएगा।

रजनी—नहीं पिताजी, मुझे यक़ीन है वह बहुत ही अच्छा और मीठा अनन्नास लाएँगे।

लक्ष्मीचन्द—अरे, यह कालिज के बागी छोकरे फल-फल की पह-चान क्या जानें ? इनके दिमाग पर तो एटम बम सवार है। कहीं अन-न्नास की बजाय एटम बम न उठा लाए।

रजनी—अच्छा, जब वह आएँगे तब देख लीजिएगा कि अनन्नास लाते हैं या एटम बम लाते हैं। अगर अच्छा और मीठा अनन्नास लाए तब तो आप उसे (देखती है कि बाप पैर लम्बे करके ऊँघ गया) पिताजी ! पिताजी !

[कोई जवाब नहीं। अब लक्ष्मीचन्द खुर्राटे लेने लगता है।]

रजनी—अभी तो बात कर रहे थे, एक पल में सो भी गए।

[फिर वह दबे पाँव रेडियो के पास जाती है और उसमें [illegible] कोई संगीत का प्रोग्राम धीमी आवाज़ में चालू कर देती है। फिर [illegible] से कमरे से बाहर आती है। उसके जाने के बाद खाने के कमरे [illegible] में मंगू आता है।]

मगू—सेठजी ! अनन्नास तो··

[देखता है, लक्ष्मीचन्द सो रहा है । इसलिए बात पूरी किए बिना ही उल्टे पैरों वापस चला जाता है ।

अब स्टेज की रोशनियाँ धीरे-धीरे धीमी होती जाती हैं और हम स्वप्न की दुनिया में पहुँच जाते हैं । रेडियो पर सितार-संगीत चलता है । चन्द सैकंड के बाद दरवाज़े पर खटखट होती है । लक्ष्मीचन्द चौंककर उठ बैठता है ।]

लक्ष्मीचन्द—कौन है ? आ जाओ अन्दर ।

[राज अन्दर दाखिल होता है । उसके हाथ में रूमाल से ढकी एक चीज़ है जो अनन्नास भी हो सकती है और एटम बम भी ।]

लक्ष्मीचन्द—कौन ? राज, तुम ?

राज—जी, मैं

लक्ष्मीचन्द—कहो, लाए अनन्नास ?

राज—(चीज को मेज पर रखते हुए बहुत सावधानी से । चीज अभी तक ढकी हुई है ।) जी हाँ, अनन्नास लाया तो हूँ आपके वास्ते, लेकिन यह एक बड़े अनोखे ढंग का अनन्नास है । शायद आपको पसन्द न आए ।

लक्ष्मीचन्द—कपड़ा हटाओ, देखूँ तो

[राज ड्रामाई अन्दाज से धीरे-धीरे कपड़ा हटाता है । मेज पर अनन्नास नहीं, एक एटम बम रखा नजर आता है ।]

लक्ष्मीचंद—यह क्या ? बम ?

राज—(बड़े इतमीनान से) मामूली बम नहीं, एटम बम ।

लक्ष्मीचंद—नहीं-नहीं, तुम मजाक कर रहे हो ।

राज—मजाक तो तब होगा सेठजी, जब यह बम फटेगा । तब आपका घर ही नहीं, सारा शहर तबाहो-बरबाद हो जायगा । शहर के चारों तरफ दस-दस मील तक बरसों कभी खेती न हो सकेगी । शहर की आबादी में से अव्वल तो कोई बचेगा ही नहीं, और बच भी गया

तो सिर के बाल झड़ जायेंगे। दाढ़ी, मूँछ, पलकें, भवें, सब सफाया! आप खुद ही सोचिए, कितने फायदे की बात है। नाइयों का धन्धा ही न रहेगा। और फिर ब्लेडों की कीमत भी तो आपकी दुआ से बढ़ती जा रही है। हर तरफ़ बचत-ही-बचत होगी। और सुनिए, जो लोग बचेंगे उनकी औलाद कितनी ही नस्लों तक या तो अन्धी होगी या लँगड़ी। किसी के कान नहीं तो, किसी की नाक गायब क्यों सेठजी! कितना मज़ा आएगा हा! हा! हा! हा!

लक्ष्मीचन्द—यह है क्या बला? इसे दूर रखो!

राज—मैंने कहा नहीं, यह एटम बम है। आपका प्यारा एटम बम। (एकदम मजाक छोड़कर गम्भीर हो जाता है) यही वह शैतान का हथियार है। अगर एक बार दुनिया ने इस हथियार को इस्तेमाल करने का फैसला कर लिया, तो समझ लीजिए कि दुनिया ने पाप के सामने अपना सिर झुका दिया है।

लक्ष्मीचन्द—तुम कम्यूनिस्टों जैसी बातें कर रहे हो। मैं अभी पुलिस को बुलाकर तुम्हें गिरफ्तार कराता हूँ।

राज—जरूर बुलाइए! मगर आपको शायद यह नहीं मालूम कि मैं तो सिर्फ प्रधान मन्त्री पण्डित जवाहरलाल के मुँह से निकले हुए शब्दों को दुहरा रहा था।

लक्ष्मीचन्द (खिसियाना होकर) - तुम चाहते क्या हो।

राज—मैं आपसे राजनीति की बातें करने नहीं आया! सच्ची, मैं खुद इन बातों को नहीं समझता। मैं तो सीधा-सादा कवि हूँ। सिर्फ यह कहना चाहता हूँ कि मैं और रजनी, यानी कि रजनी और मैं मतलब यह कि हम यानी कि यानी कि एक दूसरे से प्रेम करते हैं और एक दूसरे से शादी करना चाहते हैं।

लक्ष्मीचन्द—रहो झोपड़ों में और सपने देखो महलों के। तुम्हें मालूम होना चाहिए कि मेरी बेटी का ब्याह किसी लखपति, करोड़पति से होगा।

राज—यूँ कहिए कि अनाज, कपड़ा, तेल, शक्कर तो आप ब्लैक मार्केट में बेचते ही थे। अब अपनी बेटी का ब्लैक मार्केट करने का इरादा है ....मगर याद रखिए, रजनी का ब्याह मुझसे होगा।

लक्ष्मीचन्द—यह कभी नहीं हो सकता। अपनी बेटी की किस्मत एक कंगाल कवि के साथ फोड़ दूँ। इससे तो अच्छा है मेरी बेटी मर जाय।

राज—फिक्र न कीजिए, इसका भी इन्तज़ाम हुआ जाता है।

लक्ष्मीचन्द—क्या मतलब?

राज (घड़ी देखते हुए)—मतलब यह कि दस मिनट में यह एटम बम फट जायगा। उसी पल न आप होंगे, न आपकी बेटी। न यह मकान होगा, न यह शहर . न आपकी दुकान होगी, न आपकी गद्दी। न आपके मिल होंगे, न आपका बैंक होगा . न शेयर बाजार होगा और न मैं हूँगा, न मेरी कविता होगी। न कला होगी, न साहित्य ..सब झगड़े टंटे, सब परेशानियां एकदम दूर हो जायँगी। सब कर्ज़ अदा हो जायँगे सौदा बुरा नहीं है सेठजी, सोच लीजिए।

लक्ष्मीचन्द—तुम पागल हो गए हो। अपने साथ दूसरों का भी खून करना चाहते हो।

राज—मैं पागल नहीं हुआ सेठजी! आपका समाज पागल हो गया है, जो रोज सैकड़ों नौजवानों का खून करता है। आपकी दुनिया पागल हो गई है जहां इन्सान रोटी के टुकड़े-टुकड़े को तरसता है और कुत्ते डबल रोटी खाते हैं। जहाँ कवि और कलाकार भूखे मरते हैं और दलाल हज़ारों-लाखों कमाते हैं। जिस दुनिया में बच्चों को दूध देने के लिए पैसा न हो—नौजवानों को तालीम देने के लिए पैसा न हो—स्कूल और अस्पताल खोलने के लिए पैसा न हो, पर दस-दस करोड़ खर्च करके एक एटम बम बनाया जाता है, वह दुनिया पागल नहीं तो समझदार है? इसीलिए मैं यह एटम बम का अनन्नास आपको भेंट करने के लिए लाया हूँ .....

लक्ष्मीचन्द (डरकर)—नहीं नहीं—इसे यहाँ से ले जाओ—दूर ले जाओ—मुझे इससे डर लगता है ··

राज (चिढ़ाने के अन्दाज में दोहराते हुए)—"एटम कोई हमारे मकान पर थोड़ा ही गिरेंगे। लड़ाई से तो तेरे बाप का भला होने वाला है।" पर सेठजी, यह एटम बम आपके मकान पर ही फटेगा। (घड़ी देखकर) सिर्फ़ पाँच मिनट बाक़ी हैं।

लक्ष्मीचन्द (और डरकर)—बस बस, मुझे क्षमा करो। इसे यहाँ से ले जाओ। मैं तुम्हें हज़ारों रुपए नक़द दे दूँगा ·

राज—(हँसकर) एक करोड़पति सेठ की जान की कीमत सिर्फ़ हजार रुपए!

लक्ष्मीचन्द—जो मांगोगे, दे दूँगा! दस हज़ार—पचास हज़ार—लाख! मगर इसे यहाँ से ले जाओ!

राज—मुझे आपका रुपया नहीं चाहिए, सेठ लक्ष्मीचन्द! जो दौलत मुझे चाहिए, वह अनमोल है—रजनी की मुहब्बत (घड़ी देखता है) मगर अफ़सोस, अब तो सिर्फ एक मिनट रह गया है।

लक्ष्मीचन्द—(परेशानी से पागल होकर) अच्छा अच्छा, जैसा तुम चाहते हो, वैसा ही होगा ··(बेहोश होकर गिर पड़ता है, मगर बड़बड़ाता रहता है)—तुम रजनी से जब चाहो ब्याह कर सकते हो

[रोशनियाँ धीमी होते-होते बिल्कुल अँधेरा हो जाता है। जब फिर रोशनी होती है, तो न राज है न एटम बम—सेठ लक्ष्मीचन्द सो रहा है।

दरवाजे पर खटखट, लक्ष्मीचन्द चौंककर आँखें खोलता है, मगर इस बार पहले ही उसके चेहरे पर घबराहट के चिह्न हैं, जैसे कोई भयानक सपना देखा हो।]

लक्ष्मीचन्द—कौन है? आ जाओ अन्दर।

[राज अन्दर आता है। पीछे रजनी है। राज को देखकर लक्ष्मीचन्द और भी घबरा जाता है क्योंकि उसके हाथ में कपड़े से ढकी हुई कोई 'चीज़' है, जो अनन्नास भी हो सकती है और एटम बम भी। जैसे-जैसे राज

लक्ष्मीचन्द की तरफ बढ़ता है, वह डर के मारे पीछे हटता जाता है।]

लक्ष्मीचन्द—तुम फिर आ गए?

राज—(हैरानी से) फिर? हाँ, मैं आपके लिए···

रजनी—पिताजी, देखिए तो राज कितना अच्छा और मीठा अनन्नास लाया है आपके लिए—

लक्ष्मीचन्द—मैं जानता हूँ—मैं अच्छी तरह जानता हूँ—

राज (जरा परेशान-सा होकर)—क्या जानते हैं?

लक्ष्मीचन्द—कि यह किस किस्म का अनन्नास है अगर राज, इसकी कोई जरूरत नहीं थी। मुझे तुम्हारी सब बातें मंजूर हैं ··मैं तो दिल से चाहता हूँ कि तुम और रजनी, यानी रजनी और तुम—मतलब यह कि तुम दोनों ··

राज—(खुश होकर) तो आप मेरे आने का मतलब समझ गए? और आप राज़ी हैं?

लक्ष्मीचन्द—हाँ हाँ मैं तो खुद तुम्हारे पिता से यह बात करने वाला था। (रजनी से, जो खुश भी है और शर्मा भी रही है) क्यों रजनी, तू राज को पसन्द करती है न?

रजनी—पिताजी! आप कितने अच्छे हैं ·· ··

[मगू आता है।]

लक्ष्मीचन्द—क्या है?

[मगू सेठ के कान में कुछ कहता है।]

लक्ष्मीचन्द—उससे कह दो कि लक्ष्मीचन्द ने ब्लैक मार्किट का धन्धा छोड़ दिया है · ··

[मगू हैरानी से सेठ की तरफ देखता हुआ बाहर जाता है।]

रजनी—(हैरानी से) पिताजी, कब से?

लक्ष्मीचन्द—आज से बेटी, इसी वक्त से।

राज—तो इस खुशी में और कोई मिठाई नहीं, तो कम-से-कम यह अनन्नास ही खाया जाय।

रजनी—मुझे दो, मैं अभी काटकर बर्फ में लगाकर लाती हूँ।

[मेज पर से उठाने लगती है कि पिता चिल्लाकर रोक देता है—]

लक्ष्मीचन्द—रजनी! इसे हाथ मत लगाना।

रजनी—क्यों, क्या हुआ ?

लक्ष्मीचन्द—यह अनन्नास नहीं है, एटम बम है।

राज और रजनी—एटम बम!

रजनी—क्या आप सपना तो नहीं देख रहे, पिताजी ?

राज—तो लीजिए, इस एटम बम के दर्शन तो कर लीजिए—

[कपड़ा हटाकर अनन्नास को सेठ लक्ष्मीचन्द की तरफ फेंकता है, जो यह देखकर कि वह एटम बम नहीं है, खुशी के मारे बेहोश हो जाता है।]

रजनी—(दौड़कर) पिताजी!

राज (नब्ज देखते हुए)—बिल्कुल ठीक हैं। यह खुशी की बेहोशी है। अभी होश आ जायगा।

[दोनों खड़े हो जाते हैं, एक दूसरे को प्यार भरी नजरों से देखते हैं।]

राज—चलो रजनी!

रजनी—चलो। मगर कहाँ ?

राज—अपना घर बसाने।

रजनी—(खुश होकर) अपना घर!

राज—हाँ, छोटा-सा झोंपड़ा, इधर-उधर बगीचा!

रजनी—मगर एक शर्त है।

राज—वह क्या ?

रजनी—उसमें अनन्नास का एक पेड़ जरूर होगा।

राज—एक और शर्त।

रजनी—वह क्या ?

राज—वहाँ हम किसी को एटम बम के बीज कभी न बोने देंगे....

[वे साथ-साथ जाते हैं। पर्दा गिरता है।]